ऋतुचक्रम्

(अभिनवम् ऋतुसंहारम्)

हिन्दीभाषानुवादयुतम्

रचयिता :

डॉ० श्यामदेवः पाराशरः शास्त्री,

ऐम्.ए., पीऐच्.डी , ऐम्.ओ.ऐल्.

(PES) Retd.

२२३, हरिनगर, होशियारपुर (पंजाब)

मूल्यं रूप्यकाणि १२

* कथ्यं किञ्चित् तथ्यम् *

न किल काञ्चन-ककुप्कूलङ्कष-कीर्तिकामनया, न प्रतिष्ठित-पद-प्राप्तये, न प्रशंसायां परेषां प्रवर्त्तनाय, न प्रमाणपत्र-पारितोषिक-प्रभृति-परीप्सया, किं तर्हि ? परोपकार-परमेशपूजा-प्रमुख-पावन-प्रवृत्त्या पृथिव्यां प्रतिष्ठां पूगीकृत्य पुम्भिः प्रायेण प्रेप्सितं पुण्यपदं प्रयातानां पितृपादानां प्रीणनाय, प्राज्ञप्रवराणां परमप्रतीक्ष्याणां पाणिनि-प्रभृतीनां पादपाथोज-परामर्शैः पुरा परिपाविते पञ्चापप्रान्ते प्रतिष्ठितानाम् प्रमादप्राचुर्य-प्रस्मृत-पुरातनपरम्पराणाम् प्रजानां पुनः प्रतिबोधनाय, पुण्यं पुरस्कृत्य प्रत्यग्राणां प्राथमकल्पिकानां प्रोत्साहनाय, वाग्वैभव-विभूषाणां विदुषां विनोदाय, स्वर्ण-सम्पत्-समुपार्जन-संसक्तैः स्वार्थिभिः सर्वतः समुपेक्षितायाः सुरसरस्वत्याः समुपासनाय, सर्वथा सन्ततं स्वान्त-सन्तर्पणाय च प्राणायि पुस्तेयम्—

प्रेक्षावतां पादपुष्पन्धयेन
पाराशरेण

—❋—

—वर्ण्यविषयानुक्रमणी—

ओ३म्

ऋतुचक्रम् (अभिनवम् ऋतुसंहारम्)

प्रसरति यदधीनं सन्ततं कालचक्रं,
सुकृत-दुरित-साक्षी शास्ति यो दैवचक्रम् ।
प्रणुदति च विभुर्योऽहर्निशं खेटचक्रं,
स विरमयतु चक्री जन्मपञ्चत्वचक्रम् ॥

वासन्तिकं वैभवम्

ावण्यलक्ष्मीः रुषितेव याता, यासीत् कुतश्चित् सहसाऽचिराय ।
नैर्दृढं सा परिरम्भमिच्छुर्, गतानुकूल्यं विपिनस्थलीनाम् ॥१॥

जो सौन्दर्यलक्ष्मी, मानो रूठी हुई, अचानक थोड़े समय के लिये कहीं
ली गयी थी, वह धीरे से, दृढ़ आलिङ्गन की इच्छुक, वनस्थलियों की अनु-
लता को प्राप्त हो गई ।

हो ! किमप्युन्मदतां वितन्वन्, विकासमायाति ततं दिगन्ते ।
नवं किञ्चन सौभगं तत्, क्वचित् क्वचित् कण्टककाननेऽपि ॥२॥

अहो ! कुछ (अनिर्वचनीय) सरूर को विखेरता हुआ, दिगन्त में व्याप्त,
ह नया-२ कोई लावण्य, कहीं-२ कँटीले कानन में भी विकास को प्राप्त हो
हा है ।

कृतव्रतानामपि चेतनानां, चापल्यमापल्लवयन् मनस्सु ।
विभाति पुष्पोपवनैः समन्तात्, सद्यः कृतः कश्चन कायकल्पः ॥३॥

चारों ओर फुलवाड़ियों द्वारा, संयत जीवन वाले भी मनुष्यों के हृदयों
चंचलता को बढ़ाता हुआ, एकदम, कोई कायाकल्प सा कर लिया गया
तीत होता है ।

विशेषरूपेण वियोजितानां विरोधिता ह्य ! विधिताऽदयेन ।

विहाय सामान्यगतिं प्रसह्य, चलाचलत्वं हृदयानि यान्ति ।४।

विशेषतः, विरोधी निर्दय दैव द्वारा बिछोड़े गये लोगों के हृदय, सामान्य धड़कन को छोड़ कर, चलाचल होते जा रहे हैं।

अवाप्त-पत्यागमवाचिकायाः, दिने दिने प्रोषितबालवध्वाः ।
दृढेऽपि कूर्पासक-सन्धिबन्धे, पदं निधत्ते शनकैः श्लथत्वम् ।५।

पति के आने के संदेश को प्राप्त करने वाली, विरहिणी बाल-वधू के दृढ भी अंगिया की सीवन के जोड़ में, प्रतिदिन, धीरे २ शिथिलता कदम रख रही है।

शीतर्त्तुना लुण्ठितपूर्वमेतद्, ऐश्वर्यमासाद्य पुनः प्रसन्नाः ।
स्मेरा लताद्याः प्रथयन्ति गीतं, द्विरेफझङ्कारमुखेन शश्वत् ।।६।

शीत ऋतु द्वारा पहले लूटे गये इस ऐश्वर्य को पुनः पा कर प्रसन्न मुस्काते लता आदि, भ्रमरों की झङ्कार के द्वारा निरन्तर संगीत फैला रहे हैं।

हिमास्तृता या प्रकृतिश्च दीना, सितांशुकासीद् विधवेव पूर्वम् ।
नवा वधूरद्य विभाति सैषा, सौभाग्य-सम्पत्ति-परिष्कृताङ्गी ।।७

हिमाच्छादित जो वेचारी प्रकृति, पहले श्वेत अंशुक वाली विधवा सी थी वही अब, सुहाग की सम्पदा से सजे देह वाली, नववधू प्रतीत हो रही है।

नीता नितान्तं, तटिनी तनुत्वं, कालेन याऽनारतशीतभीता ।
सा तुन्दिमानं तनुते क्रमेणाऽद्योल्लाघतामेत्य यथामयावी ।।८।

निरन्तर शीत-संत्रस्त जो नदी, समय द्वारा नितान्त कृश कर दी गई थी वह अब क्रमशः (इस प्रकार) स्थूलता को प्राप्त हो रही है, जैसे स्वस्थता को प्राप्त हो कर रोगी।

विलासवाटी-वनवीथिकोत्थे, स्वैरे सुगन्ध-स्थविमा समीरे ।
प्रायः पटीयान् पिशुनः प्रजातः, प्रफुल्ल-वल्ली-परिरम्भणानाम् ।।९।

विलास-वाटिकाओं, तथा वन-श्रेणियों से उठने वाली, मन्द समीर में सुगन्ध की सघनता, मानो (उस समीर द्वारा) विकसित लताओं के आलिङ्गन की सूचक बन गई है।

मन्त्रैः कलैः कोकिलकूजिताख्यैराराधितः कामसखोऽद्य देवः ।

आप्लावयन् दीप्तिचयैर्दिगन्तान्, साकारतामेति वनस्थलीषु ॥१०॥
कोकिलों के कूजन-रूपी सुरीले मंत्रों से, आराधित किया गया बसन्त (काममित्र) देव, अब सौन्दर्य-समूहों से दिगन्तों में बाढ़ लाता हुआ, वनस्थलियों में साकारता को प्राप्त हो रहा है।

मध्योदितोल्लुञ्चित-पक्वकेशः स्थितो रहस्यर्धवयस्क एषः।
मुहुर्मुहुर् दर्पणदत्तदृष्टिः, वासांसि सायं सुरभीकरोति ॥११॥
बीच में उगे उखाड़ दिये हैं पके केश जिसने ऐसा, एकान्त में स्थित, यह अर्धवयस्क (अधखड़) बार २ दर्पण पर दृष्टि डालने वाला, सायंकाल के समय कपड़ों को इत्र लगा रहा है।

स्वःसुन्दरी-स्वप्नमुदीक्षमाणस्तूलोपबर्होपहितैकटङ्गः ।
पल्यङ्कसुप्तो विधुरः प्रजातः, प्रजावतीनां निशि नर्मपात्रम् ॥१२॥
अप्सराओं के स्वप्न देखता हुआ, रुई के सिरहाने पर रखी एक टांग वाला, पलंग पर सोया रँडवा, रात के समय भावजों के परिहास का पात्र बन गया।

[दृ]शा जिता श्रीर्यकयाऽद्यहारिणी, तारल्यमूर्त्तिस्तनुमध्यहारिणी।
[स]ा भाति सूनोपवने विहारिणी, चला क्षुरी चम्पकचारुहारिणी ॥१३॥
जिस ने दृष्टि द्वारा हरिण की शोभा को जीता, चञ्चलता की मूर्ति, पतली कमर के कारण मनोहारिणी, फुलवाड़ी में घूमती हुई, चमेली का सुन्दर हार धारण करने वाली वह, चलती फिरती छुरी लग रही है।

[शू]न्यं तमैतस्ततिकं प्रदेशं, दृष्ट्वा तिरश्चीन-विलोचनाभ्याम्।
[वृ]द्धः परावृत्य विलोकते तां, भृङ्गावली-वारणवञ्चनाभिः ॥१४॥
तिरछे नेत्रों से इधर-उधर के उस प्रदेश को शून्य देखकर, भ्रमर-पंक्ति [क]ो हटाने के बहानों से, वृद्ध पलट कर, उस (छुरी) को देख रहा है।

तुषारशुभ्रा प्रलयस्य वेला, बालाक्षिपातैर्मृदुमोहनास्त्रैः।
प्रयाति सेयं मधुमासमूर्त्तिः प्रदीपयन्तीव दिशां प्रदेशान् ॥१५॥
हिम-धवला, प्रलय के ज्वारभाटे जैसी, मधुमास की प्रतिमा, यह बाला, [मृ]दु मोहनास्त्रों जैसे अक्षिनिपातों द्वारा, दिक्प्रदेशों को आग लगाती हुई सी [ज]ा रही है।

पिशङ्गपुष्पप्रकरैः परीता, प्रीतैः परं पीतपटैश्च पुम्भिः।

प्राप्ता प्रतीक्ष्या मधुपञ्चमीयं, प्रस्तौति पर्वप्रभुतां पृथिव्याम् ॥१६॥

पीत पुष्पसमूहों तथा पीले वस्त्रों वाले प्रसन्न पुरुषों से व्याप्त, प्रतीक्षित आई हुई वसन्तपञ्चमी, पृथ्वी पर (इस) त्योहार की प्रभुता को प्रस्तुत करती है।

परिष्कृता पुष्पपरागपूगैः, पीताम्बरत्वं पृथिवी प्रपन्ना।
पिकश्च वंशीरवमातनोति, कुञ्जेषु कूलेषु च काननेषु ॥१७॥

पुष्पपरागों से परिपूर्ण पृथ्वी, पीताम्बर (श्रीकृष्ण) बन गई है और कोयल कुञ्जों, किनारों और काननों में बांसुरी का शब्द फैला रही है।

मञ्जीरकाञ्ची-मृदुशिञ्जितानि, प्रासाद-वातायननिर्गतानि।
उद्घोषयन्तीव निशासु विष्वक्, फलेग्रहित्वं नवयौवनानाम् ॥१८॥

महलों के झरोकों से निकलने वाली, पाँजेबों और करधनियों की मन्द झंकारें, रातों में चारों ओर, मानों नई जवानियों की, सफलता की घोषणा कर रही हैं।

भुजान्तरं दन्तुरतामुपैति, मध्यं मनाग् बन्धुरतां तनोति।
'श्यामा'-पदं प्राप्य विभाति गौरी, मारेषुधारा ऽहह! दुर्निवारा ॥१९॥

भुजाओं के बीच का भाग (छाती) दन्तुर हो रहा है, श्रोणी कुछ ऊबड़ खाबड़ हो गई है। अहा! गोरी 'श्यामा' पद को पाकर, दुर्वार काम की इषुधारा सी लग रही है।

विसृज्य वैराग्य-विजृम्भणानि, पुस्तानि चाध्मातविपुष्टवक्षाः।
भाणा भवन्तीह न वेति जीर्णः, कर्णेजपः पृच्छति पुस्तपालीम् ॥२०॥

वैराग्यवर्धक पुस्तकें लौटा कर, दुबली छाती को फुलाने वाला वृद्ध, यह 'भाण हैं या नहीं' इस प्रकार, कान मे कहता हुआ, पुस्तकालयाध्यक्षा को पूछ रहा है।

क्रयाय पिष्टातक-सौरभादेस्तथा च वाजीकरणौषधानाम्।
कोलाहलो ऽयं क्रयिणां विपण्यां, मधो! तवैश्वर्यमभिव्यनक्ति ॥२१॥

पाउडर इत्र आदि तथा वाजीकरण औषधियों के खरीदने के लिए बाजार में ग्राहकों का यह शोर, हे वसन्त! तेरे प्रभुत्व को प्रकट कर रहा है।

अतर्कितं वीक्ष्य पतिं प्रवासतः, प्रत्यागतं बालवधूर्वियोगिनी।

उत्कण्ठिता ऽह्नाय रदच्छदे ऽञ्जनं, करोत्यलक्तेन च नेत्ररञ्जनम् ॥२२॥

अचानक प्रवास से लौटे हुए प्रियतम को देखकर, विरहिणी उत्कण्ठिता बालवधू, अफ़रातफरी यानि जल्दी में, ओठ पर अञ्जन लगा लेती है और अलक्तक से नेत्ररञ्जन कर लेती है।

तन्वीः परिष्वज्य लताः समीराः, गृह्णन्ति सौरभ्यमहो! ऽदसीयम्।
तासां चिरं चुम्बितकोरकास्ते, मधूनि मुष्णन्ति मदान्मिलिन्दाः ॥२३॥

अहो! तन्वी लताओं का आलिंगन कर, समीर उनका सौरभ ले रहे हैं. और देर तक मुकुलों को चूमने वाले भ्रमर, मद से उनका मकरन्द चुरा रहे हैं.

आकृष्य कर्णौ हृदयानि यूनां, हरन्ति पीयूषकिरः पिकाश्च।
विलासवेलाविलयात् पुरस्तात्, त्वं भूतिमङ्गस्य विलुण्ठ बाले! ॥२४॥

अमृत बरसाने वाली कोयलें, युवकों के कानों को आकृष्ट कर हृदय हर रही हैं' हे बाले! विलास के समय (यौवन) के बीतने से पूर्व, तू (भी) शरीर का ऐश्वर्य लूट ले।

तप्तं गुडं पत्रपुटे विलग्नं, सा लोलया लोलितया लिहन्ती।
बाला पथे याति कृषीवलस्य, स्कन्धे स्थिता स्वर्गसुखं स्पृशन्ती ॥२५॥

पत्ते के दोने में चिपके गर्म गुड़ को, आगे पीछे घुमाई जीभ से चाटती हुई, किसान के कन्धे पर बैठी बालिका, स्वर्गीय सुख का स्मरण करती हुई, मार्ग में जा रही है।

आलोक्य गोधूमविभूतिमात्म-क्षेत्रेष्वहो! हालिक-दम्पतीनाम्।
गाढोपगूढानि रहश्चिराय, द्वैतेऽपि चाद्वैतमुदाहरन्ति ॥२६॥

अहा! अपने खेतों में गेहूं की सम्पत्ति देखकर, किसान दम्पतियों के, एकान्त में चिरकाल तक गाढालिङ्गन, द्वैत (उनके दो) होने पर भी अद्वैत (उन की एकता) को बता रहे हैं।

नारङ्गनिम्बूनगनिष्कुटायां, सितानि सूनानि सुवासितानि।
फलानि चालोच्य मुदाह गेहिन्येका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा ॥२७॥

संगतरे तथा निम्बुओं के वृक्षों की बगिया में सुगन्धित पुष्पों एवं फलों को देख कर गृहिणी कहती है—'एक काम दो काज' यह (उक्ति) सत्य है।

आकण्ठपूर्त्तः रसिता मिलिन्दैः, या माधुरी काचन माकरन्दी ।
तां लेलिहानाः परतः पुनस्ते, स्वादिष्ठ-झङ्कारमिषा किरन्ति ॥२८॥

भ्रमरों ने जो कोई (अलौकिक) मकरन्दसम्बन्धिनी मधुरता कण्ठ तक भरते हुए चखी थी, उसे बार-बार चाटते हुए वे, फिर दूसरी ओर, अति स्वादु झंकार के व्याज से बिखेर रहे हैं।

सूनासवोन्मत्तपतङ्गपुञ्जे, कुञ्जेऽलिगुञ्जे नवमल्लिकानाम् ।
मधु महीपं विरुदावलीभिः, स्तुवन्ति सत्रा सरघासमूहाः ॥२९॥

पुष्पासव (मधु) से उन्मत्त पक्षि-समूहों वाले, भ्रमरों से गुञ्जायमान, नवमल्लिकाओं के कुञ्ज में, मधुमक्षिका-समूह, मिलकर बसन्त-महीप की विरुदावलियों से स्तुति कर रहे हैं।

नवीननिर्मोकनिभोत्तरीया, नतानना चाप्यवगुण्ठनान्तः ।
नेत्रत्रिभागेन निरीक्षमाणा, शरीरिणी मारवधूर्नवोढा ॥३०॥

नये निर्मोक जैसे उत्तरीय वाली नववधू, झुके मुँह वाली भी घूँघट के अन्दर नेत्र के तृतीय भाग (कटाक्ष) से देखती हुई, शरीरधारिणी कामपत्नी (रति) लग रही है।

लीलावने शाद्वलशोभनीये, पूर्णे प्रफुल्लैः परितः प्रसूनैः ।
प्राप्ताः प्रभाते प्रतिभान्ति पृथ्वीं, प्रायेण तारातततयो नभस्तः । ३१॥

घासस्थलों से शोभित, चारों ओर खिले फूलों से पूर्ण, विलासवन में, प्रातः ऐसा प्रतीत होता है, मानो आकाश से पृथ्वी पर तारा-समूह उतर आये हों।

लीलालयाः केचन चित्रपक्षाः, कृशाः किरः स्वादुगिरः प्रवेगात् ।
मल्लीलता-मञ्जुलमण्डपेषु, ततो विशन्तीह च निर्विशन्ति ॥३२॥

लीला से छुप जाने वाले, चितकबरे पंखों से युक्त, छोटे, मधुर वाणी वा[ले] कुछ पक्षी, वेग से मोतिया-लताओं के कुञ्जों मे उधर से दाखिल होते हैं औ[र] इधर से निकल जाते हैं।

आसेचनत्वं रमणीयतायां, काक्षेषु मैरेयकमादकत्वम् ।
चलासु चेष्टासु तडिद्विलासो, व्यङ्ग्यं च वाणीषु मधौ वधूनाम् ॥३[३॥]

वसन्त में, नवोढ़ाओं की रमणीयता में तर्पकत्व (आकर्षण), कटाक्षों

मदिरा की मादकता चंचल चेष्टाओं में विद्युद्विलास तथा वाणियों में व्यंग्य (होता है)

ततौ तरूणां तरुणास्तिरोहिताः, पूजार्थ-पुष्पप्रचयप्रलम्भात् ।
तोये तरन्तीं तलुनीं तटिन्याः, पश्यन्ति पाठीन-परिप्लवाङ्गीम् ॥३४॥

पूजा के लिए फूल चुनने के बहाने, वृक्षों की पंक्ति में छुपे हुये युवक, मछली की भान्ति चंचलांगी, नदी के पानी में तैरती हुई तरुणी को, देख रहे हैं।

पुष्पैः परिष्कृत्य पिशङ्गपर्णैः, शिरांसि सैमन्तिकमुद्रितानि ।
वस्त्रैर्वृताः पत्रपतत्रिचित्रैः, बाला वसन्तं विहसन्ति वामाः ॥३५॥

पीली पंखुड़ियों वाले पुष्पों से, सिन्दूर-चिह्नित सिरों को सजाकर, पत्तों और पक्षियों के चिह्नों वाले कपड़ों से आच्छादित सुंदर बालाएं, वसन्त का मखौल उड़ा रही हैं।

उपेक्षमाणा रमणीमणीयं, गोप्यानि गात्राणि पतत्पटानि ।
मत्ता महिम्ना मधुमाधुरीणां,लासं विलासं च तनोति तन्वी ॥३६॥

गिर रहे कपड़ों वाले गोप्य अंगों की परवाह न करती हुई यह तन्वंगी श्रेष्ठ रमणी, वसन्त की माधुरियों की महिमा से उन्मत्त, नृत्य तथा विलास दिखा (फैला) रही है।

मनाग्विनिद्रैर्मुकुलैः शरावैः, मरन्दमद्यानि निपीय जातेः ।
प्रलापिनः पुष्पवनीं मिलिन्दाः, मैरेयशालामिव कल्पयन्ति ॥३७॥

कुछ खिले, प्यालों जैसे मालती के मुकुलों से मकरन्दरूपी मद्यों का पान कर, प्रलाप करने वाले भ्रमर, फुलवाड़ी को मानो मधुशाला बना रहे हैं।

विलोक्य पौष्पीं विविधां विचित्रां, वार्णीं विभूतिं वनवाटिकासु ।
प्रीतिप्रदायी प्रतिभाति पुण्यो, मधूत्सवोऽयं किमु होलिका वा ? ॥३८॥

वनवाटिकाओं में, पुष्पसम्बन्धिनी, अनेक प्रकार की, विचित्र रंगों की सम्पदा को देख कर, ऐसा लगता है कि क्या यह प्रीतिप्रद, पावन वसन्तोत्सव है अथवा होलिका ? ।

प्राणेश्वरेऽन्तर्गृहमभ्युपेते, सौभाग्यभाजां च विलासिनीनाम् ।
दृश्यानि चक्रीकृतदोर्द्वयानि, सहाङ्गभङ्गेन विजृम्भणानि ॥३९॥

पति के अन्तर्गृह में प्रविष्ट होने पर, सौभाग्यवती विलासिनियों की, दोनों भुजाओं को चक्राकार बनाकर अंगड़ाईयों के साथ जंभाईयाँ द्रष्टव्य होती हैं।

आचम्य चाम्पेयवनस्थलीनां, सौरभ्यसम्पत्ति-सुरां स वाति।
मन्दो मरुन्मेदुरितो मरन्दैः, सन्धुक्षणो निद्रित-वासनानाम् ॥४०॥

चम्पक-वनस्थलियों की, सुरभि-सम्पदा रूपी सुरा का पान कर, मन्द, मकरन्द से बोझल, तथा सुप्त वासनाओं को जगाने वाली वायु, बह रही है।

संसक्त-सूनस्तवका महीरुहाः, लता नता नूतनपत्रकेतनाः।
भृङ्गावली-गुञ्जितकैतवेन, न स्वागतं किं मधवे ब्रुवन्ति ? ॥४१॥

लगे हुए पुष्पस्तवकों वाले वृक्ष, झुकी हुई, नवीन पल्लव रूपी ध्वजाओं वाली लताएं भ्रमर-पंक्तियों की गुञ्जार के व्याज से, क्या वसन्त को 'स्वागतम्' नहीं कह रहे ?

प्रागैन्दवी या च मयूखमाला, शीता शिता शल्यशतोपमासीत्।
मायामयस्येव मधोर्महिम्ना, सुधामयी सा स्वदतेऽद्य किञ्चित् ॥४२॥

जो चाँद की किरण-माला, पहले (शीतर्तु में) ठण्डी, तीक्ष्ण सैंकड़ों शल्यों जैसी लगती थी, वह अब मायावी जैसे वसन्त की महिमा के कारण, अमृत सी कुछ स्वादु प्रतीत होती हैं।

या शीतभीतेव सरोजराजी, नीरे निलीना निभृतं न्यषीदत्।
संवीक्षितुं साम्प्रतमन्तरायं, सा स्वैरमुत्कन्धरतां तनोति ॥४३॥

मानो सर्दी से डरी हुई जो कमल-पंक्ति, पानी में छुप कर चुप बैठी थी वह अब विघ्न को देखने के लिए धीरे से ऊपर गर्दन निकाल रही है।

वार्धक्य-वैराग्य-विजृम्भणेन, वीतेन शीतेन च कुञ्चितानि।
जरातुराणामपि मानसानि, कवोष्णतां किञ्चिदुपागतानि ॥४४॥

बुढ़ापे तथा वैराग्य के बढ़ने से, और व्यतीत शीत से सिकुड़े, बूढ़ों के भी हृदय कुछ कवोष्णता (थोड़ी गर्मी) को प्राप्त होने लगे हैं।

तुषारशङ्काश्रितमूकिमानि, माकन्दलेखान्तरकाननानि।
वाचालयन् वर्धत एवं विष्वग्, विकस्वरः कोऽपि पिकस्वरोऽयम् ॥४

तुषार की शंका से मौन का आश्रय लेने वाले, बीच में आमों की कतारों से युक्त, वनों को वाचालित करता हुआ, चारों ओर फैलने वाला, कोई (अलौकिक) कोयलों का स्वर, बढ़ता ही जा रहा है।

क्वचित् क्वचित् कुज्झटिका विभातें, विस्तारयन्ती मृदुशीतिमानम्।
आभाति शीतस्य पलायितस्य, पादप्रघातास्तृतपांसुपालिः ॥४६॥

कहीं-कहीं सुबह के समय, हल्की सी सर्दी को फैलाने वाली धुन्ध, भागे जा रहे शीत के पैरों के आघात से फैली हुई धूलि की पंक्ति प्रतीत होती है।

समन्ततः कोरकिते रसाले, काले मदोल्लासिनि जृम्भमाणे।
जरन् कुमारो रहसि स्थितोऽयं, विवाह-विज्ञापनदत्तदृष्टिः ॥४७॥

चारों ओर आम को बौर लग जाने पर और मदोल्लासयुक्त समय (वसन्त) के फैलते जाने पर, यह जवान होते हुए भी बूढ़ा, विवाह के विज्ञापनों पर दृष्टि डाले एकान्त में बैठा है।

सम्पादिते सम्प्रति शीधुपाने, माने प्रकृत्यैव वियुज्यमाने।
जानन्ति भेदं युवजानयो नो, विभावरीणामथ वासराणाम् ॥४८॥

अब सुरापान कर लिए जाने पर, और स्वभाव से ही मान के दूर हो जाने पर, तरुण-पत्नियों वाले लोग, रातों और दिनों के भेद को नहीं पहचानते हैं।

वनानि प्रत्यागतयौवनानि, तरङ्गितान्तःकरणाश्चरन्तः।
पुंस्कोकिलाः पञ्चमकाकलीभिर, गायन्ति वासन्तिकवैभवानि ॥४९॥

लौट आई जवानी वाले वनों में घूमते हुए, उल्लसित हृदय, नर कोयल, ंचमस्वर की काकली द्वारा, वसन्त सम्बंधी वैभव के गीत गा रहे हैं।

श्चिद् विचित्रो महिमा मधो! ते, यत् काम एकः सममेव जातः।
दर्पको यौवनमण्डनानां, मारः परेषां मदनोऽपरेषाम् ॥५०॥

हे वसन्त! तेरी कोई विचित्र महिमा है कि; एक ही काम, एक साथ, यौवन से भूषितों के लिए 'दर्पक', दूसरों के लिए 'मार' तथा अन्यों के लिए 'मदन' बन गया है!

क्षेत्राणि नानाविधसर्षपाणां, पुष्पप्रभा-पुञ्जितपीतिमानि ।
विस्तारितानीव विभान्ति विष्वग्, दिग्भिर्वसन्तादरविष्टराणि ॥५१॥

फूलों की कान्ति से इकट्ठी हुई पीतिमा वाले, अनेक प्रकार की सरसों के खेत, दिशाओं द्वारा वसन्त के आदर के लिए, चारों ओर विछाये गलीचे से लगते हैं।

माकन्दमाला-मुकुलान्यदृष्ट्वा, वसन्तदूती तनुतेऽद्य हूतिम् ।
चिराच्छयानानि निशम्य किं तां, जातानि तान्यङ्कुरणोन्मुखानि? ॥५२॥

आम्रपंक्तियों में मुकुलों को न देखकर, आज कोयल (उनका) आह्वान कर रही है। क्या उसे सुनकर, चिर से सोये हुए वे (मुकुल) अङ्कुरित होने लगे हैं ?

गवाक्षनिष्कासित-पूर्वकाया, माया जगन्मोहन-मुग्धमूर्त्तिः ।
प्रसाधिताङ्गी पदवीं पुनः पुनः, प्रतीक्षते प्रोषितभर्तृकेयम् ॥५३॥

झरोखे से निकाले हुए पूर्वकाय वाली, माया सी संसार का मोहन करने वाली सुन्दर मूर्ति वाली, सजाये अंगों वाली, यह प्रोषितभर्तृका बार-बार मार्ग की ओर प्रतीक्षा कर रही है।

मत्त्वा न पथ्यं भ्रमणं वसन्ते, वाटीषु वृद्धा विहरन्ति विष्वक् ।
परागपातैर्गलदश्रवो गतं, तारुण्यमेते तु गवेषयन्ति ॥५४॥

वसन्त में भ्रमण को पथ्य मान कर ये बूढ़े चारों ओर वाटिकाओं में नहीं घूम रहे, किन्तु पराग के पड़ जाने से बहते आंसुओं वाले ये, खोई जवानी को ढूंढ रहे हैं।

लावण्यलग्नास्तरुणिम्नि मग्नाः, भग्नागतानेकयुवान्तरङ्गाः ।
काक्षेक्षणे दक्षिणतां क्षणेन, संशिक्षिताः केन कुशीलवेन ॥५५॥

लावण्य से आश्लिष्ट, जवानी में डूबी, तोड़ दिये हैं आने वाले अनेक युवकों के हृदय जिन्होंने ऐसी, इन को, क्षण में किस नट ने कनखियों से देखने की कुशलता सिखा दी है !

स्वतः स्वदन्ते नवयौवनाभ्यः, सुपारदर्शीनि सितांशुकानि ।
लालायितान्तःकरणैः कुमारैर्, निरीक्ष्यमाणानि निमेषवर्जम् ॥५६॥

लालायित हृदयों वाले युवकों द्वारा एकटक देखे जा रहे अति पारदर्शी (सूक्ष्म) वस्त्र, उठती जवानी वालियों को स्वतः भा रहे हैं।

युवैष ताराप्रणयाभिलाषी, निरीक्षतेंऽसेन निहत्य मत्या।
बालां क्षमां चाप्यभियाचमानः, किञ्चिन्मृषारोषकषायिताक्षीम् ॥५७॥

तारामैत्री (आँख मिलाने) का इच्छुक यह युवा, जानते हुए कन्धे को भिड़ा कर, क्षमा भी मांगता हुआ, कुछ बनावटी क्रोध से लाल नेत्रों वाली, युवती को देख रहा है।

पूर्वं प्रियादृष्टमुखं युवासौ, आदर्शमादाय गतो विदेशम्।
चुचुम्बिषुः पान्थजनत्रपावान्, पश्चात् पुरः पश्यति पार्श्वयोश्च ॥५८॥

पहले प्रिया द्वारा देखा गया है मुँह जिस में, ऐसे दर्पण को लेकर विदेश गया वह युवक (उसे) चूमने का इच्छुक, पथिक जनों से शर्माता हुआ, पीछे, आगे और पार्श्वों की ओर देख रहा है।

बाला समायोजित-सर्वसज्जा, लज्जावती काचन दर्पणे स्वम्।
निरूपयन्ती नवमञ्जिमानं, मानं गताऽमानमहो ! मधोः श्रीः ॥५९॥

सम्पूर्ण श्रृंगार किये, कोई शर्मीली युवती, दर्पण में अपने नये लावण्य को देखती हुई, अन्दर न समाने वाले मान को प्राप्त हो गई। अहा ! वसन्त की लक्ष्मी विचित्र है।

निर्वर्ण्य काञ्चित्तरुणीं सकासं, वक्रोक्ति-वैदग्ध्यविलासभाजः।
विसृज्य विद्याविषयानकस्माद्, व्रीडाविहीना वटवो विजाताः ॥६०॥

किसी तरुणी को देखकर, खाँसने के साथ व्यंग्योक्तियों की कुशलता से न बहलाने वाले छात्र, अचानक विद्या विषयों को छोड़कर लज्जाहीन गये।

मलन्मिलिन्दोत्सवमङ्गलानि, सौगन्ध्य-सम्भार-परिप्लुतानि।
दिनानि जातानि शुभाय यूनामुद्वेलितोल्लासकरम्बितानि ॥६१॥

मिलते हुए भ्रमरों के उत्सव रूपी मंगल से युक्त सुगन्धि के समूह से प्लावित, चरमसीमा तक बढ़े हुए उल्लास से मिश्रित दिन, तरुणों के कल्याण-कारक हो गये।

विनिद्रसूनस्तवशोणिमाऽसौ, सीमन्त-सिन्दूरसमस्वरूपा।
श्रेणी शुभा किंशुककाननानां, सौभाग्यमाख्याति वसुन्धरायाः ॥६२॥

वह खिले फूलों के गुच्छों से लाल, माँग के सिन्दूर जैसे स्वरूप वाली मंगलमयी पलाश-वनों की पंक्ति पृथ्वी के सुहाग को कह रही है।

प्राज्यप्रलापैः परितः पतद्भिः, प्रसूनपात्राणि च लेलिहानैः।
दीना कृता चम्पकपुष्पवाटी, शिलीमुखैः सम्प्रति शीधुशाला ॥६३॥

अधिक प्रलाप करने वाले, चारों ओर लड़खड़ाने वाले और पुष्परूपी पात्रों को बार-बार चाटने वाले भौरों ने, बेचारी चम्पकों की फुलवाड़ी को अब मधुशाला बना दिया है।

चिरानुचारी चपलः कपोतो, भ्रमंश्च नृत्यन् सविधे प्रियायाः।
तस्याः स्पृशंश्चञ्चुमहो ! स्वचञ्च्वा, वात्स्यायनीयां विशिनष्टि विद्याम् ॥६४

देर से पीछे घूमने वाला, प्रिया के आस-पास चक्कर काटता तथा नाचता हुआ, और अपनी चोंच से उसकी चोंच को छूता हुआ चपल कपोत, वात्स्यायन की विद्या (कामशास्त्र) की विशेषता बता रहा है।

राजीवराजी-रजसां समूहः, खं व्याप्नुवानो मरुता प्रणुन्नः।
प्रतीयते प्रोषितभर्तृकाणां, नैराश्यदग्धान्तरधूमभूमा ॥६५॥

वायु से प्रेरित, आकाश को व्याप्त करता हुआ, कमल श्रेणियों का पराग पुञ्ज, विरहिणियों के, निराशा से दग्ध हृदय के धूम-समूह सा लगता है।

अनाश्रवः कोकिलकाकलीनामालम्बमानः पदवीं ह्रसिष्ठाम्॥
अनल्प-सङ्कल्पविकल्पलीनः, पान्थः स्खलन् जाङ्घिकतां तनोति ॥६

कोयलों की काकलियों की ओर ध्यान न देता हुआ, छोटे से छोटे मार्ग का सहारा लेता हुआ, अधिक संकल्प विकल्पों में डूबा हुआ, गिरता पड़ता पथिक, लम्बे डग भरता जा रहा है।

वासांसि धृत्वा विशिखाग्रविद्ध-ताम्बूलपत्र-प्रतिमाङ्कितानि।
बालाः कुमार्योऽत्रपिता हृदय्यां, विवृण्वते कामपि मूकभाषाम् ॥६७॥

वाण के अग्रभाग से विंधे पान के पत्ते की मूर्तियों के चिन्हों वाले, वस्त्र पहन कर, निर्लज्ज कुमारी युवतियां हृदय की किसी मूकभाषा को प्रकट कर रही हैं।

विनिद्रचाम्पेयक-पुष्पजाला, समुल्लसन्मालतिका-रसाला।
वासन्तिका-वास-वहत्प्रणाला, जाता वनी गान्धिकपण्यशाला ॥६८॥

खिले चम्पक के फूलों के समूहों वालो, सुन्दर (चमकती) मालती तथा आमों से युक्त, जूही की सुगन्धि के बहते हुए प्रणाल वाली वाटिका, इत्र वेचने वाले को दुकान बन गई है।

संत्रासयन्तः सरघा-समूहान् मग्नार्धकायान्, कुसुमोदरेषु।
उत्पुच्छयन्तो युगसङ्गशीलाः, मिथोऽनुधावन्ति मृगा वनीषु ॥६९॥

फूलों के बीच में डूबे हुए आधे शरीर वाले, मधुमक्षिकाओं के समूहों को डराते हुए, उठाई पूंछों वाले. युगल रूप में साथ रहने के आदी हरिण, वनों में एक दूसरे के पीछे भाग रहे हैं।

सूनासनासीनलसत्पतत्रा, विडम्बयन्ती नवनीतमूर्त्तिम्।
चित्राङ्गिनी चित्रपतङ्गपाली, प्रसूनपत्रप्रतिमां प्रयाति ॥७०॥

फूलों के आसनों पर बैठी और चमकते पंखों वाली, माखन की मूर्ति को तिरस्कृत करती हुई, चितकबरे शरीर वाली, तितलियों की पंक्ति, फूलों की पखुड़ियों की तुलना को प्राप्त हो रही है।

अङ्गारचूडास्तनुकिङ्किणीनां, क्वाणानुकारैर्मधुरैर्विरावैः।
प्रसुप्त-पुष्पप्रकरप्रवालानुत्सङ्ग-बालानिव लालयन्ति ॥७१॥

बुलबुलें, छोटी घंटियों की ध्वनि जैसे मधुर शब्दों द्वारा, सुप्त, फूलों के समूह तथा किसलयों को, गोद में स्थित बालकों की भान्ति लालन कर रही हैं।

प्रफुल्लनीलोत्पल-मञ्जुलास्या, नीहार-हर्षाश्रुकणार्द्रपत्रा।
विलम्बितायांशुमते ब्रवीति, सरोजिनीयं किमु सुप्रभातम् ? ॥७२॥

खिले हुए नील कमल रूपी सुन्दर मुख वाली, ओस रूपी हर्ष के अश्रुकणों से गीले पत्तों वाली यह कमलिनी, क्या विलम्ब से उदित होने वाले सूर्य को 'सुप्रभातम्' कह रही है ?

प्रौढा सिताब्जैर्निशि तुल्यरूपैस्ताराततीनां प्रतिबिम्बनैश्च ।
वधूत्तरीयांशुक-सौभगानि, विडम्बयन्तीव विभाति वापी ॥७३॥

रात के समय श्वेत कमलों, और तुल्य आकृति वाली तारक-श्रेणियों प्रतिबिम्बों से शोभित वापी, बहू के उत्तरीयांशुक (दुपट्टे) की सुन्दरताओं तिरस्कृत करती हुई सी लगती है ।

तीरोल्लसत्काञ्चनचम्पकानां, बिम्बैर्वृतं नैर्झरनीरमप्यहो ! ।
दीनाध्वगानां हृदयेषु दूरं, सुदारुणं दीपयतीव वह्निम् ॥७४॥

किनारे पर चमकते सुनहरी चम्पकपुष्पों के प्रतिबिम्बों से आवृत झरने का पानी भी, आश्चर्य है, बेचारे पथिकों के हृदयों में, मानो अत्यन्त दारुण आग लगा रहा है ।

प्रफुल्ल-पुष्पप्रचयाः पलाशाः, सम्प्लाविताशा अरुणप्रभाभिः ।
वनस्थली-बालवधूकपोल-लावण्यलीलामिव निर्दिशन्ति ॥७५॥

खिले हुए पुष्प समूह वाले, अरुण-कान्तियों से दिशाओं को आप्लावित करने वाले, ढाक के वृक्ष, वनस्थलीरूपी बालवधू के गालों की सुन्दरता की मानों लीला दिखा रहे हैं ।

वल्लीव फुल्लाभरणैर्नवोढा, वामेक्षणस्पन्दननन्दिनीयम् ।
वेश्माग्रतः काकरुतं विभाते, श्रुत्वास्तरं संस्कुरुते प्रसूनैः ॥७६॥

फूलों के गहनों से वेल जैसी बनी, बाईं आँख के फरकने से प्रसन्न हुई, यह नवोढा, प्रातः घर के आगे कौवे का शब्द सुनकर, फूलों से शय्या को सजा रही है ।

उच्चावचैः सौरभसौम्यवर्णैः, काण्डावलम्बैर्विकचैः कलायैः ।
आकर्ण्यते स्वो गरिमा गुणानां, जेगीयमानो मधुपावलीभिः ॥७७॥

नाना प्रकार के, सुगन्धित सुन्दर रंगों वाले, शरकाण्डों का सहारा दिये गये, खिले हुए मटरों द्वारा, भ्रमरपंक्तियों से अत्यधिक गाई जा रही, अपनी गुणों की महिमा सुनी जा रही है ।

समर्धमाने मधुमासशासने पञ्चेषुणा कुण्डलिते शरासने ।
अद्यापि तावद् विधुराः श्वसन्तीत्युद्घोषणां दिक्षु पिकस्तनोति ॥७८॥

मधुमास के शासन के समृद्ध होते जाने पर, कामदेव द्वारा धनुष को पूरा तान लेने पर, कोयल 'अभी तक (आज भी) विधुर ज़िन्दा हैं' यह घोषणा दिशाओं में फैला रहा है

शोणा शुभंयुः शतपत्रपाली, शिखाशितं शूलशतं दधाना ।
वृतिस्थितासौ नवमल्लिकानां, सौरभ्यकोशं परिपाति शश्वत् ॥७६॥

लाल, सुन्दर, तीक्ष्ण नोकों वाले सैंकड़ों शूलों को धारण करने वाली, बाड़ के रूप में स्थित, गुलाब की पंक्ति, नव मल्लिकाओं (मोतिया) की सुगन्धि खज़ाने की निरन्तर रक्षा कर रही है ।

वातोर्मिभिर्वाहितसौरभाणां, सुमस्तवा मालतिका-वधूनाम् ।
प्रीत्या वसन्ताय वितीर्यमाणाः लसन्त्यहो ! जन्मदिनोपहाराः ॥८०॥

अहा ! वायु की लहरों द्वारा फैलाई गई सुगन्धि वाली, मालती रूपी वधुओं के पुष्पस्तवक (गुलदस्ते), प्यार से वसन्त को दिये जा रहे, जन्म-दिन उपहारों की भान्ति शोभित हो रहे हैं ।

सुमानि सौम्यानि सुवासितानि, कटूनि कक्षेषु च कण्टकानि ।
कांश्चिदेभिस्तनुतेऽद्य मोदं, तोदं कतीनामथ केतकीयम् ॥८१॥

सुन्दर सुगन्धित पुष्प हैं और कक्षों में तीक्ष्ण कण्टक, आजकल यह केतकी, इन द्वारा, कईयों को आनन्द देती है, और कुछेक को व्यथा ।

दृष्ट्वा कदम्बानि सविभ्रमाणां, कुञ्जेषु गुञ्जन्ति शिलीमुखानाम् ।
न्यस्य हस्तं हृदये निषण्णा, वियोगिनी मूर्छति पुष्पलावी ॥८२॥

विलास युक्त भौरों के समूहों को कुञ्जों में गूंजते हुए देख कर, हृदय पर हाथ धरे बैठी, विरहिणी फूल चुनने वाली, मूर्छित हो रही है ।

वाटी-विहारे नवदम्पतीनां, रहोविलासोत्सवसाक्षिकाभिः ।
संचीयते चुम्बनचातुरीभिर्, मन्दं मरन्दो मधुमक्षिकाभिः ॥८३॥

वाटिकाओं में विहार करते समय, नवदम्पतियों के एकान्त में मौज मेले के गवाह रूप, चुम्बन की चतुरता-युक्त, मधुमक्खियों द्वारा धीरे-धीरे मकरन्द इकट्ठा किया जा रहा है ।

तरुण्योऽलिभयात् स्खलन्त्यः, सक्ताङ्गिकाः केतकपत्रकेषु ।
आसिताः पुण्यफलैर् वयःस्थैः, कण्टान् विलम्बेन विमोचयद्भिः ॥८४॥

भौरों के भय से वेगयुक्त, गिरती पड़ती, केवड़े के पत्तों में उलझी अंगियाओं वाली तरुणिएं, सफल पुण्यों वाले, और कांटों को धीरे-धीरे छुड़ा रहे, युवकों द्वारा आश्वस्त की जा रही हैं।

प्रसह्य मत्तैर्मधुपैर्विशङ्कं, विधीयते वल्लिवनीषु विष्वक् ।
पदात्पदं प्रौढिमपूजितानां, कौमारभङ्गः कलिका-कुलानाम् ।८५॥

वेलों की वाटिकाओं में, चारों ओर मत्त मधुपों द्वारा, बलपूर्वक, निःशङ्क होकर, पग-पग पर, प्रौढता के कारण पूजनीय (आदरणीय) कलियों के समूहों का, कौमारभंग किया जा रहा है।

त्वं प्राणधारासि मधोः शरीरे, सौन्दर्यसर्वस्वमसि त्वमेव ।
त्वामन्तराऽसौ स्मितमुग्धमूर्त्ते ! कङ्कालशेषत्वमुपैति दीनः ॥८६॥

हे मुस्कान-भरी भोली मूर्त्तिवाली ! (प्रिये !) तू वसन्त के शरीर में प्राणों की धारा है, तू ही लावण्य की समूची पूंजी है, तेरे बगैर बेचारा वह (वसन्त) कङ्काल-मात्र शेष रह जाता है।

वर्षप्रभे पुष्यति जीविते मिते, वसन्तवद् यौवनमेकदैव तत् ।
मुषाण मोदं दयिते ! विलासमाकण्ठमास्वादय चादसीयम् ॥८७॥

हे प्रिये ! वर्ष जैसे छोटे से (परिमित) जीवन में वसन्त की भान्ति वह यौवन एक बार ही प्रफुल्लित होता है, अतः आनन्द लूटो, और उस के विलास का आकण्ठ आस्वादन करो।

सभाजिताः सस्मित-सूनसङ्घैः,
सौम्यत्व-सम्पत्सुभगाः समीराः ।
सेकैः समन्तात् सुरभे ! सुधायाः,
समस्त-संसार-सुखङ्कराः स्युः ॥८८॥

हे वसन्त ! मुस्काते पुष्पसमूहों द्वारा सत्कृत, सुकुमारता की सम्पदा सौभाग्य से युक्त वायुएं, चारों ओर अमृत के छिड़कावों द्वारा, समस्त संसार के लिए सुख-प्रद हों।

इति श्रीश्यामदेव-पाराशर-प्रणीते ऋतुचक्रे वसन्तवर्णनं विनिवृत्तम्

—❀—

* भीष्मो ग्रीष्मः *

वाताः करीषङ्कषतामुपेताः, रवेर्मयूखैर्म्रदिमापि मुक्तः ।
प्राप्तः प्रतापी परितोऽपि प्रायो, नृणां स नग्नङ्करणो निदाघः ॥१॥

वायुएं सूखे गोबर या कूड़े कर्कट को बुहारने (उड़ाने) वाली हो गईं, और सूर्य की किरणों ने कोमलता छोड़ दी, चारों तरफ़, प्रतापी और लोगों को प्रायः नंगा करने वाला, वह ग्रीष्म आ पहुँचा ।

सौरभ्य-सम्पत्समयः सुमानां, स्वैरं वसन्तः समयाद् विसृज्य ।
तस्यैव तावद् विरहज्वरेण, ध्रुवं धरित्री दधतेऽतितापम् ॥२॥

पुष्पों की सुगन्धि-रूपी सम्पत्ति का समय वसन्त, छोड़कर धीरे से चला गया, मानो उसी के विरहज्वर से पृथ्वी अति ताप को धारण कर रही है ।

तुषारतोयैस्तपनोपतप्तान् , आतर्पयामोऽतितरामितीव ।
अमानमानेन हिमाद्रिनद्यस्, त्रुट्यत्तटं तुन्दिलतामुपेताः ॥३॥

सूर्य द्वारा सताये गये हुओं को, ठण्डे या बर्फ़ के पानियों से, हम नितान्त तृप्त करती हैं, मानो इसी अपरिमित गर्व के कारण, हिमालय की नदियां, तटों को तोड़ते हुए, तुन्दिलता (स्थूलता) को प्राप्त हो गईं ।

सम्पीडिता चोभयतोऽप्यहोभ्यां, किं पिच्चिता हा ! रजनी-जनीयम् ।
मुग्धाङ्गसंस्पर्शभयात्तयोर्वा, संकोचयत्यात्मतनूमभीक्ष्णम् ॥४॥

हा ! क्या दोनों तरफ़ से दिनों द्वारा पीडित की (दबाई) गयी रजनी-वधू, पिचक गई है ? या (वह) मुग्धा उन दिनों के अंग के छू जाने के भय से अपने शरीर को अत्यन्त संकुचित कर रही हैं ?

दिनेशदाहाद् द्रवतां दधित्वा, दिनानि तन्वन्ति हि द्राघिमाणम् ।
त्रस्तेव शुष्केव तथातितापात्, तमी त्रियामा-पदवीमुपेता ॥५॥

सूर्य के दाह से पिघलाव को धारण कर, दिन दीर्घता को प्राप्त हो रहे हैं, और अति सन्ताप के कारण त्रस्त सी, तथा सूख गई सी रात्रि, 'त्रियामा'-पद को प्राप्त हो गई है ।

दन्दह्यमाना दिवसेऽतिदर्पाद्, दिशो दशाप्यस्तदयो दधानः ।
मा चन्द्रिकाचामतु मेति रात्रौ, ऊष्मेत्यहो ! वेश्मसु सम्प्रवेशम् ॥६॥

दिन में दयारहित, अतिगर्व से, दश दिशाओं को दग्ध करती हुई गर्मी, अहो ! रात में 'मुझे कहीं चांदनी न चाट जाय' इस लिए (गर्मी) घरों में घु जाती है ।

स्वसौरभैर्मांसलिते समीरे, सुमानि निम्बस्य शनैर्लसन्ति ।
स्वैरं विकासोपधिना हसन्ति, वीतानि वासन्तिकवैभवानि ॥७॥

खुशी से विकास के बहाने, बीते हुए वसन्त के वैभवों का मज़ाक उड़ा हुए, नीम के पुष्प, अपनी सुगन्धि द्वारा मांसल की गई वायु में, धीरे-धीरे खे (नाच) रहे हैं ।

सम्फुल्लितोऽर्कः स्मयते समन्तात्, दृष्ट्वार्कमौन्नत्यपदे समाख्यम् ।
निदाघसम्भावनतूर्यमेतद्, धत्तूरकः पुष्पमिषाद्ध धत्ते ॥

अपने समान नाम वाले अर्क (सूर्य) को उन्नति के पद पर देख क चारों ओर खिला हुआ आक, मुस्करा रहा है, और यह धतूरा, फूल के बहा निदाघ के सत्कार के लिए तुरही पकड़े हुए है ।

नुतो नितान्तं नवमल्लिकाभिः, शिरीषपुष्पैः पुरुपूजनीयः ॥
आन्दोल्य द्राक्षास्तवकांस्तथाम्रानानम्रयन्नेति निदाघवातः ॥९

नवमल्लिकाओं (मोतिया-बेलों) द्वारा प्रशंसित, सिरस के फूलों द्वा अधिक पूज्य, निदाघ की वायु, द्राक्षा के गुच्छों को डुलाती हुई तथा आमों झुकाती हुई, आ रही है ।

स्वेदं सिराः सूक्ष्मतमाः स्रवन्ति, तन्वन्ति गात्रेष्वथ चुक्रिमाणम् ।
स्विन्नानि देहेषु तथांशुकानि, सक्तानि दाहस्य दराद् विभान्ति ॥१

अति सूक्ष्म नाड़ियां पसीना बहा रही हैं और अंगों में खटास रही हैं, तथा भीगे हुए कपड़े, दाह के डर से, शरीरों के साथ चिपक लगते हैं ।

विमुक्त-वैहायस-वक्रिमाणो वैरोचना दीधितयः प्रचण्डाः ।
वेगेन बाणा इव वासरार्धे, विस्तारि-वक्षस्यवनेर्विशन्ति ॥११

वायु या आकाश में छोड़ दिये टेढ़ेपन वाली, सूर्य की प्रचण्ड कि दोपहर के समय बाणों की भान्ति, वेग से, पृथ्वी के विस्तृत वक्षःस्थल प्रविष्ट हो रही हैं ।

भृष्टानि भूयो भवनानि भूमौ, चण्डांशुभिः सम्पुटतां गतानि ।
तथेष्टका भ्राष्ट्रकखाततुल्यास्, तातप्यमानाः परितः प्रतोल्यः ॥१२॥

भूमि पर, चण्ड-किरणों द्वारा भुने महल, सम्पुट जैसे बने हुए हैं, तथा चारों ओर अत्यन्त तपी हुई गलियां, ईटों के भठ्ठों की खाईयों के तुल्य (बन गई हैं)।

चिराय चीरेष्वरुचिः प्रकल्पते, शनैर्विनाशाय तथाशनाया ।
आलस्यमाविर्भवतीति कर्मण्यलन्तमः कोऽपि जनो न जायते ॥१३॥

चिरकाल तक कपड़ों में अरुचि रहती है तथा धीरे-धीरे भूख नष्ट होती जाती है। आलस्य पैदा हो जाता है; इस लिए कोई भी आदमी कर्म करने में समर्थ नहीं रहता है।

भास्वान् नभस्वांश्च दहत्यहो ! बहिः, नितान्तमन्तः पुनरप्युदन्या ।
अतो हि लोको विकलोऽखिलोऽप्ययम्, उच्चावचानाश्रयतेऽभ्युपायान्
॥१४॥

अहो ! बाहर सूर्य तथा वायु जलाता है, और अन्दर, वार-वार प्यास अत्यन्त (जलाती है), इसलिए व्याकुल हुआ यह सारा संसार, अनेक प्रकार के उपायों का आश्रय लेता है।

ग्रीष्माद् भयं चाप्यनुभूय भीष्मात्, कुञ्जेषु पुञ्जेष्वथ पादपानाम् ।
लोका निलीना गृहकक्षकुक्षिषु, मशा वटोदुम्बरिकाफलेष्विव ॥१५॥

और भयङ्कर ग्रीष्म से भय खा कर, कुञ्जों मे, वृक्ष-समूहों में, और घरों के कमरों की कुक्षियों में, लोग इस प्रकार छुपे हुए हैं, जैसे उदुम्बर-फलों में मच्छर छुपे होते हैं।

हृद्यानि मद्यानि च सोपदंशान्यास्वाद्य शीतानि तुषारयोगात् ।
केचिन्न जानन्त्यपि लोकनाथं, कथा वराकस्य नु का तपस्य ॥१६॥

स्वाद (सुरस), मसाले (चाट आदि) के साथ बर्फ़ के योग से ठण्डे किये गये मद्यों का पान कर, कई (लोग) ईश्वर (सूर्य) की भी परवाह नहीं करते, बेचारे ग्रीष्म की तो बात ही क्या।

स्पर्शानुमेयं दधतेऽद्य वासः, केचिच्च निर्मोकनिभं तपार्त्ताः ।
पुनः पुनः स्नानपरः परः पुमान्, अधोंऽशुकं चापि जिहासतीव ॥१७॥

गर्मी से व्याकुल कई लोग, आजकल, छू कर ही पहचाना जाने वाला

वस्त्र और कई केंचुली जैसा वस्त्र धारण करते हैं। दूसरा आदमी, बार-बा
स्नान करने में आसक्त, मानो अधोवस्त्र भी छोड़ देना चाहता है।

वातानुकूलेषु कुलेषु केचिद्, धाराम्बुसेकाञ्चितचत्वरेषु।
लीना विलासेषु न लेशतोऽपि, निदाघधामानमुपालभन्ते ॥१८॥

कई (लोग) किये गये धारा-जल-सिञ्चन वाले आँगनों से युक्त, वाता
नुकूलित घरों में, विलासों में डूबे हुए, रंचमात्र भी सूय को उलाहने नहीं देते

अनारतं मत्सरवारणीषु, जलार्द्रविद्युद्व्यजनोर्मिलासु।
विलीयते वारिणि वारुणीतः, रहस्सु चेतश्च मिथः प्रियाणाम् ॥१९॥

जल से आर्द्र बिजली के पंखों (कूलरों) द्वारा पैदा की गई लहरों वाली
मच्छरदानियों में निरन्तर जल में मद्य मिल रही है, और एकान्त में प्रेमि
का दिल आपस में मिल रहा है।

सान्द्रं पयः क्षारतुषारशैत्याद्, वाताम-द्राक्षा-मधुधूलिमिश्रम्।
विश्रामवेशमस्वथ सेवमाना हेमन्तयन्तीव तपं तु पौराः ॥२०॥

बादाम दाख तथा बूरा खाँड से युक्त. निमक तथा बर्फ द्वारा गाढे कि
(कुल्फी बनाये) गये दूध को विश्राम-गृहों में सेवन करते हुए नागरिक, मा
ग्रीष्म को भी हेमन्त बना रहे हैं।

ग्राम्याः पुनः सन्तत-सक्तुपानैः, बालाः सरःकेलिषु सिञ्चनाद्यैः।
हासैर्विलासैस्तरुणाश्च वृद्धा न्यग्रोधमूलेषु श्रमापनोदैः ॥२१॥

खले सतक्राम्बुजुषः कृषाणा उल्लास्य सस्यादि-विशोधनैश्च।
उज्जृम्भमाणं दिवसार्धदाहं, न चागतं नापि गतं विदन्ति ॥२२

ग्रामीण लोग निरन्तर सत्तू पीकर, बालक सरोवर की खेलों में सिञ्चन
कर, युवक हास-विलास कर, और वृद्ध वटवृक्षों के मूलों में थकावटें दूर क
तथा छाछ युक्त पानी पीने वाले किसान, खलिहान में ऊपर फैंक कर स
आदि के शोधन करके, फैलते हुए दोपहर के दाह को, न आए को जानते
न गये को।

सिक्तं सुशीतं बहुवारिवातैर्, वेश्म प्रविश्यात्र चिराय केचित्।
विस्मर्तुकामा इव ग्रैष्मिकं तत्, प्रदाहदुःखं दिवसे स्वपन्ति ॥

इस (ग्रीष्म) में कई (लोग) अधिक पानी तथा वायु द्वारा सींचे गये और सुशीत घर में देर तक प्रविष्ट होकर, ग्रीष्म सम्बन्धी उस प्रदाह के दुःख को, मानो भुलाने को इच्छा वाले, दिन में सोते हैं।

उषीर-पाटीर-तुषारशीतं, पीतं पयः यत् प्रचुरप्रमाणम्।
भूयस्तरां हन्त! निमेष एव तद्, रोमाणि प्रस्वेदमिषा वमन्ति ॥ ४॥

खस चन्दन तथा बर्फ़ से ठण्डा किया गया जो पानी, अधिक मात्रा में पिया गया था, हन्त! पलक मारते ही, उसे और भी अधिक मात्रा में, पसीने के व्याज से, रोम उगल देते हैं।

एलाम्लिका-जीरकपानकानि, लवङ्गहिङ्ग्वादिपरिष्कृतानि।
पिबन्ति नासान्तमपीह नार्यः, परं पिपासां दवयन्ति नासाम् ॥२५॥

लौंग, हींग आदि द्वारा परिष्कृत, इलायची, इमली तथा जीरे के पेयों को, स्त्रियें नासा तक (भर कर) पी जाती हैं, पर (वे) इनकी प्यास को दूर नहीं कर पाते।

दुःखाकरो द्विप्रहरस्तु दूरं, नितम्बिनीनां च पिचण्डिलानाम्।
फूत्कृत्य धुन्वन्ति हि वीजनं ते, दग्धा हता हेति मुहुर्ब्रुवाणाः ॥२६॥

बड़े २ नितम्बों वालियों तथा मोटे पेट वालों के लिए, मध्याह्न तो अति दुःखद होता है। वे 'जल गये, हाय मर गये' ऐसे बार २ कहते हुए फूत्कार कर के पंखा डुलाते हैं।

ह्रसीयसी सम्प्रति दाढिकापि स्फुटानि रोमाणि दुनोति दूरम्।
आः! ब्रह्मसूत्रेऽप्यरुचिः प्रदाहाद्, धन्याः स्त्रियः केचन तूवराश्च ॥२७॥

अब अति छोटी दाढ़ी भी, चौड़े हुए रोम कूपों को, नितान्त दुखी कर रही है। हाय! सन्ताप के कारण यज्ञोपवीत में भी अरुचि हो रही है। स्त्रियें तथा कुछ दाढ़ी-मूंछ-रहित (खोजे) धन्य हैं।

श्वासोऽपि शीतं सलिलं शरीरे, शमो दमो वा बलिमा तदेव।
अद्यास्ति लोकैरिह नीरवर्जं, न चैषणीयं न गवेषणीयम् ॥२८॥

शरीर में प्राण भी शीत जल है, अथवा शम, दम तथा बल वही है। आज लोगों द्वारा, यहां पर, पानी को छोड़ (कुछ भी) न वाञ्छनीय है न तलाशने योग्य है।

निपीय पानीयमहो ! मुहुर्मुहुः, पिचण्डिलत्वं पुरुषाः प्रयाताः ।
तृषा कृषा नैव तथाप्युपांशु, तप्तांशुभिर्हा ! कृतमन्त्रणेव ॥२९॥

अहो ! वार-वार पानी पी कर लोग बड़ी तोंद वाले हो गये; तो भी मानो एकान्त में तप्त किरणों के साथ ; की सलाह वाली प्यास, कम नहीं होती ।

आः ! जीवजातस्य यथा यथान्तः, तुषाग्निदाहा प्रथते पिपासा ।
सूरोस्रनालैरिव कूपनीरं, पीतं तथा निम्नतरं प्रयाति ॥३०॥

हाय ! जैसे-जैसे प्राणिमात्र के अन्दर तुष की आग को भान्ति (धीरे-धीरे) जलाने वाली प्यास, बढ़ रही है, वैसे ही सूर्य द्वारा किरणों रूपी नालियों से मानो पिया जा रहा कूएं का जल, नीचे से नीचे जा रहा है ।

शूत्कार-गर्भैश्च द्रुमान् दलद्भिर्, धराधरेन्द्रानपि धर्षयद्भिः ।
निमज्जयद्भिः कपिशिम्नि लोकान्, प्राग् वाशितैः सूचितरौद्ररूपैः॥३१॥

शूत्कार के शब्द से युक्त, वृक्षों को उखाड़ी हुईं, पर्वतराजों को भी झकझोरती हुईं, दुनियां को भूरे रंग में डुबोती हुईं, पहले ही पक्षियों के शब्दों द्वारा सूचित भयावह रूप वाली ।

चीत्कारपूर्णानि कुलानि कृत्वा, छदीः शराणां गगने क्षिपद्भिः ।
आन्दोलयित्वा च शिरोगृहाणि, कल्पान्तकं कालमुपानयद्भिः ॥३२॥

घरों को चीत्कारपूर्ण कर के, सरकण्डों की छतों को गगन में फैंकती हुईं, चन्द्रशालाओं (अटारियों) को हिला कर, कल्पान्त का समय ला देने वालीं ।

लज्जापटान् वीचिमतो वधूनां, फट्शब्दपूर्णान् प्रसभं हरद्भिः ।
सम्भावितैश्चापि सगालिदानं, चीरापहाराद् रजकैः ककुप्सु ॥३३॥

लहरों से युक्त, फट् शब्द से पूर्ण, नारियों के घाघरों या साड़ियों को जबरदस्ती हरण करने वाली, कपड़ों के दिशाओं में हर ले जाने के कारण धोबियों द्वारा गालियों के साथ सत्कृत की गईं ।

गृहेषु वातग्रहिलेषु प्रायः, प्रागेव पर्यस्तपटादिकेषु ॥
आस्फाल्य चित्राणि निपातयद्भिः, पूरं च पांसोः पटवासपिष्टम् ॥३४॥

प्रायः पहले ही इधर उधर विखेर दिये गये कपड़े आदि वस्तुओं वाले

हवादार घरों में, चित्रों को हिला कर तथा पाउडर जैसे पिसे पांसुपूर को गिराने वाली।

तूर्णं तमस्काण्डविलीयमानं, दिनं निशायां परिवर्तयद्भिः।
खातान् रजोराजिभिरुन्नयद्भिः, पाश्चात्यधन्वप्रभवैः प्रवातैः ॥३५॥

सहसा गहन अन्धकार में डूबे दिन को रात में बदलती हुईं, और गढ़ों को धूलि-समूहों से भरती हुईं, पश्चिम के रेगस्तानों से पैदा होने वाली आँधियों द्वारा।

विहस्तिता वेष्टितवस्त्रसक्तैस्तोतुद्यमाना द्रुनखैः शिताग्रैः।
भयद्रुताश्चानुभवन्ति दीनाः, हा! हान्ध्यमानाथ्यमिवाध्वनीनाः ॥३६॥

व्याकुल किये गये, लिपेटे गये कपड़ों में उलझे हुए, तीखे अग्रभागों वाले कांटों से अत्यन्त पीडित किये जा रहे, डर से तेज़ चलने वाले, बेचारे पथिक, हाय! हाय! मानो अन्धेपन तथा अनाथपन का अनुभव कर रहे हैं।

मरुत्तरङ्गोत्थघनोपघातान्, खडक्किका-द्वारपुटोद्गवाक्षान्।
पादाम्बुजैः पांसुलकुट्टिमानि, वधूः पुनाना चपलं पिधत्ते ॥३७॥

वायु के झोंकों द्वारा पैदा की गयी गहरी चोटों वाली, खिड़कियों, द्वार-पुटों तथा रोशनदानों को, चरण कमलों से धूलि भरे फर्शों को पवित्र करती हुई वधू, जल्दी से बन्द कर रही है।

वात्येरिता धन्वनि वालुकाया वहन्ति नद्यो बहुवेगवत्यः।
उड्डीय भूमिं परिवर्तमाना भवन्त्यहो! सैकतपर्वताश्च ॥३८॥

मरुस्थल में, आन्धी द्वारा प्रेरित, अति वेग-युक्त रेत की नदियां बह रही हैं। अहो! उड़ कर भूमि पर घूमते हुए रेत के पर्वत बनते जा रहे हैं।

मरीचिकाभिः सिकतास्थलीषु, व्याप्तासु दूरं क्षितिजावधीह।
ऊष्मोर्मिमालीव विभाति विश्वं, दिनार्ध एव प्रलयं निनीषुः ॥३९॥

यहां रेतीले मैदानों में, दूर क्षितिज-पर्यन्त मृगतृष्णाओं के फैलने पर गर्मी का समुद्र सा, दोपहर के समय ही, संसार में प्रलय ला देने की इच्छा वाला प्रतीत होता है।

चण्डत्वहेतोर्दरमुद्रिताक्षैरालोकिता नो मृगतृष्णिकेयम्।
हरेः करस्पर्शमुपेत्य भीता, प्रकम्पते गौरियमद्य नूनम् ॥४०॥

प्रचण्डता के कारण, कुछ बन्द की गई आँखों वाले लोगों द्वारा, देखी जाने वाली यह मृगतृष्णा नहीं, निश्चय से आज सूर्य (सिंह) के करस्पर्श को प्राप्त कर डरी हुई यह पृथ्वी धेनु) अधिक काँप रही है।

दूनास्मि दूरं तपनोपतापैरितीव ह्यात्मार्त्तिनिवेदनाय।
वर्षाधिदेवस्य गतान्तरिक्षे पार्श्वं रजोदण्डमिषा धरित्री ॥४१॥

'हाय ! मैं सूर्य के सन्तापों से अति पीड़ित हूँ' मानों इस प्रकार अपनी पीड़ा को बताने के लिए पृथ्वी, बवण्डर के व्याज से, आकाश में वृष्टि के अधिदेव (इन्द्र) के पास गई है।

धूतैः प्रवातेन च पांसुपूरैः, भृशं दृशामर्तितर्तिं दधानैः।
दन्तान्तपिष्टैः सिकताकणैर्वा, रोमाञ्चमञ्चन्ति वपूंषि पुंसाम् ॥४२॥

आँखों में नितान्त पीड़ा पैदा करने वाले, आँधी द्वारा उड़ाये गये धूलि-समूहों से, या दाँतों में पिसने वाले रेत के कणों से, पुरुषों के शरीर रोमांच को प्राप्त हो रहे हैं।

दृशोऽन्धयद्भिर् धुतधूलिधूमैर्, वातभ्रमैर्घर्मजलार्द्रितानाम्।
मुहुर्मुहुर्मार्जियतां मुखाद्यं, तिलन्तुदस्येव भवन्ति वेषाः ॥४३॥

बार-बार मुख आदि को पोंछने वाले, पसीने के पानी से भीगे हुए लोगों के, आँखों को अन्धा करने वाले और धूलिधूम को उड़ाने वाले बवण्डरों के कारण, तेली जैसे कपड़े हो रहे हैं।

संशोषणोऽसौ श्रमशीकराणां, खर्बूजविल्वादिकसौरभाढ्यः।
धम्मिल्लमाला वरवर्णिनीनां, तरङ्गयन् क्वापि च वाति वातः ॥४४॥

कहीं-कहीं स्वेदबिन्दुओं को सुखाने वाली, खर्बूज़ों और विल्वफलों की सुगन्धि से भरी, सुन्दरियों के केशबन्धों के गजरों को तरङ्गित करती हुई, वह वायु बहती है।

बलेन विक्रम्य विलुण्ठ्यमाना, वासन्तिकीं वीक्ष्य तपेन लक्ष्मीम्।
प्रतप्तवातोपधिना दिनार्धे, तपस्विनी निःश्वसितीव धात्री ॥४५॥

ग्रीष्म द्वारा बलपूर्वक आक्रमण कर लूटी जा रही, वसन्त की लक्ष्मी को देख कर, बेचारी (तपस्विनी) पृथ्वी, दोपहर के समय अति तप्त वायु के बहाने मानों आहें भर रही है।

उत्खाय गर्तं द्रुतमग्रपद्भ्यां, प्रणालकूले स रसालमूले ।
लालालसल्लोलितलम्बलोलस्तप्तो धरां श्वा शरणीकरोति । ४६।।

नाली के किनारे, आम के मूल में, शीघ्रतया आगे के पैरों से गढ़ा खोद कर, लारों से चमकती तथा हिलती लम्बी जीभ वाला, सन्तप्त कूकर, पृथ्वी की शरण में चला जाता है ।

शीतेतरांशुप्लुषिताः पदाग्रैरुत्खाय हा ! शीतल-भूतलानि ।
श्वानोऽनिशं शीघ्रतरं श्वसन्तो लालार्द्रलोलल्ललनाः श्रयन्ति ।।४७ ।

हाय ! सूर्य द्वारा जलाये गये, निरन्तर शीघ्रतया साँस लेते हुए, लारों से गीली लपलपाती जिह्वाओं वाले कुत्ते, शीतल भूतलों को उखाड़कर आश्रय लेते हैं ।

आतापिनस्तारकचुम्बिनो हा !, लोकं विहायापदि चाद्य जाताः ।
ये दह्यमानस्य महीतलस्य, खेऽङ्गारखण्डप्रतिमा विभान्ति ।।४८।।

हाय ! आज संसार को विपत्ति में छोड़कर, चीलें सितारों को चूमने वाली हो गयीं यानि बहुत ऊँची उड़ गयीं, जो कि जल रहे भूतल के, आकाश में उड़ते हुए कोयलों के टुकड़ों यानि चिनगारियों सी लगती हैं ।

तापातिरेकात् शनकैः सरन्तः, तृषेषदुन्मीलितचञ्चवश्च ।
खगा निराशाः करुणं रुवन्त आयान्ति शुष्काल्पजलाशयेभ्यः ।।४६।।

गर्मी की अधिकता के कारण धीरे चलते हुए, प्यास से थोड़ी खुली चोंचों वाले, निराश पक्षी, करुण-क्रन्दन करते हुए, सूखे छोटे जलाशयों से लौट रहे हैं ।

आचान्ततोयेषु रवेः कराग्रैः, प्रायेण शेषक्वथितोदकेषु ।
जम्बालशेषेषु च पल्वलेषु, प्राणन्ति कूर्मा न, न वा म्रियन्ते ।।५०।।

सूर्य की किरणों के अग्रभागों द्वारा, प्रायः पिये गये पानी वाले, उबलते शेष जल वाले और सिर्फ कीचड़ मात्र शेष, जोहड़ों में, कछुए न जी रहे हैं न मर रहे हैं ।

तत्रैव ताम्यन्ति सहायहीना दीनाश्च मीना मलिने निलीनाः ।
ऊर्ध्वोदराः पक्ववटा इवैके, तरन्ति तोये परिवर्तमानाः ।।५१।।

वहीं असहाय बेचारी कीचड़ में धँसी मछलियों के दम घुट रहे हैं, कुछ

(मछलियां) ऊपर की तरफ किये पेटों वाली, पकौड़ों की भान्ति तड़फती हुई, पानी में तैर रही हैं।

दौर्गन्ध्यदुष्टे सलिलेऽतिसान्द्रे, भेकादिकाः क्षुद्रतराश्च जीवाः ।
आगन्तुना भान्ति परिस्फुरन्तः, कालेन कूले कलहायमानाः ।।५२।।

बदबू से दूषित अति सघन जल में, किनारे पर तड़पने वाले, मेंढक आदि अति छोटे जीव, शीघ्र आने वाली मौत के साथ, लड़ते हुए से प्रतीत हो रहे हैं।

तप्तेऽप्यहो ! पाथसि पार्ष्णिदघ्ने, सुशीतले पिच्छलपङ्कपूरे ।
मग्नार्धकाया मृदुमुद्रिताक्षा माहेन्द्रमोदं महिषा मिलन्ति ।।५३।।

एड़ी तक गहरे पानी के गर्म होने पर भी अति शीतल गाढे पङ्क समूह में डूबे आधे शरीर वाले और थोड़ी मुँदी आखों वाले भैंसे, इन्द्र जैसा आनन्द लूट रहे हैं।

शूत्कारपूर्वं पृथुलं श्वसन्तस्तेऽङ्गं यथाशक्ति च लोठयन्तः ।
शृङ्गैः क्षिपन्तः परितोऽपि पङ्कं, वहन्ति रोधस्सु च युद्धमुद्राम् ।।५४।।

वे (भैंसे) शूत्कारपूर्वक लम्बे २ साँस लेते हुए और यथाशक्ति शरीर को लुढ़काते हुए, सींगों द्वारा चारों ओर कीचड़ फैंकते हुए, किनारों पर युद्ध की मुद्रा को धारण किये हुए हैं।

पङ्के निमग्ना महिषी परत्र सा, लाङ्गूलसन्ताडिततुन्द-दुन्दुभिः ।
रोमन्थमभ्यस्यति मुद्रितेक्षणा, क्षणात्परं द्राघयति स्वमङ्गम् ।।५५।।

दूसरी तरफ़ कीचड़ में धँसी हुई, पूंछ द्वारा (अपने) पेट रूपी नगारे को पीटने वाली, बन्द किये नेत्रों से युक्त वह भैंस, जुगाली कर रही है, और क्षण के बाद शरीर को अकड़ाती (लंबा करती) है।

ताम्बूलपर्णादिकफुल्लगल्ला, समुच्छ्वसन्ती पतितापि तल्पे ।
तापस्य हेतोश्च पिचण्डिकत्वाद्, वणिग्वधूः स्विद्यति गर्भगेहे ।।५६।।

पान के बीड़े आदि से फूली गालों वाली, पलँग पर पड़ी हुई भी फूलते साँस वाली, गर्मी तथा मोटापे के कारण वणिएं की बधू, शयनगृह में पसीने से तर हो रही है।

फूत्कारवातैर्मृदु शोषयन्तीं, वक्षः स्रवत्स्वेदभरं कृषाणः ।

भूयः समुत्तोलितचोलकां रहस्तिर्यग्दृशा पश्यति केलिकुञ्चिकाम् ॥५७॥

बहते हुए पसीने के समूह वाले वक्षःस्थल को, फूत्कार की (मुख से निकलने वाली) वायुओं से धीरे-धीरे सुखा रही, एकान्त में बार-बार अंगिया को उठाने वाली, साली को, किसान तिरछी निगाह से देख रहा है।

शिरोगृहे रात्रिसुखाय सुप्तौ, जायापती स्वेदतपातिरेकात् ।
वित्तो मिथोऽस्पृश्यमिवाधिरात्रि,चित्रोऽभिचारस्तव रे तपर्तो ! ॥५८॥

रात्रि सुख के लिए अटारी में सोये हुए दम्पती, पसीने तथा गर्मी की अधिकता के कारण रात के समय आपस में एक दूसरे को अछूत सा समझते हैं। हे ग्रीष्म ऋतु ! तेरा जादू विचित्र है।

निद्रातरङ्गैर्मुकुलीकृताक्षा बालाः स्वमात्रापि विबोध्यमानाः ।
पुनः श्लथाङ्गा निपतन्ति तल्पे, कस्मै न शीतः स्वदते प्रभातः ॥५९॥

नींद की लहरों से अधमुँदी की आँखों वाले, अपनी माता द्वारा भी जगाये जा रहे बालक, बार-बार शिथिल शरीर वाले, बिस्तर पर गिर पड़ते हैं। (भला) शीत प्रभात किसे नहीं अच्छा लगता।

स्फुरत्सफुत्कारनसोऽनुधावन्, खरश्चरंश्चावकरस्य कूटे ।
किं तारहिङ्कारमुखेन हृष्टो विगर्हते भास्करचण्डिमानम् ? ॥६०॥

फरकती हुई फुत्कारयुक्त नाक वाला, (गधी के) पीछे दौड़ता हुआ और कूड़े के ढेर पर चरता हुआ प्रसन्न गधा, क्या हिनहिनाहट के द्वारा, सूर्य की प्रचण्डता की निन्दा कर रहा है ?

तापाद् भयात् पादतलं प्रपन्ना, दोना दिनार्धे प्रणताध्वनीनम् ।
छायाऽभिधत्ते ध्रुवमेतदेव—'साधो ! दयामाचर मामवेति ॥६१॥

गर्मी के भय से पादतल में आ पड़ी हुई, बेचारी दोपहर के समय प्रणत हुई छाया, पथिक को निश्चय से यही कहती है—'हे साधो ! दया करो, मेरी रक्षा करो'।

निदाघकाले नितरां विशाले, रवेः करालैर्निशितांशुजालैः ।
संत्रासितान्तर्निपतत्यहो ! सा, छाया न तस्याभिमुखी कदापि ॥६२॥

नितान्त विशाल ग्रीष्म-काल में, सूर्य के भयंकर तीक्ष्ण किरण-समूहों द्वारा,

अन्दर से डराई गयी, वह छाया कभी भी उसके सामने नहीं गिरती, यह आश्चर्य है। (छाया सदैव सूर्य से उल्टी ओर पड़ती है)

तीव्रोष्मणा पादनखम्पचानि, लङ्घ्यानि शीघ्रं सिकतास्थलानि ।
सिक्तानि चाप्यध्वगमण्डलीनां, स्वेदेन भूतानि न शीतलानि ॥६३॥

उग्र उष्णता के कारण पैरों के नखों को जलाने वाले, शीघ्रतया लाँघने योग्य, रेतीले मैदान, पथिक-समूहों के पसीने से सींचे गये भी, शीतल न हुए।

उत्तोल्य चोलं पुरतश्च पश्चादान्दोलयन्ती बहुशः कराभ्याम् ।
मिथोऽपसर्तुं नियतं निदाघं, संसूचयत्यत्र कृषाणकान्ता ॥६४॥

हाथों से, बहुत वार, चोले को उठा कर, आगे पीछे डुलाती हुई किसान की पत्नी, इस समय निश्चय से एकान्त में निदाघ को दूर हट जाने के लिए इशारा कर रही है।

आस्वाद्य बाला असकृत् फलानि, माणिक्य-माधुर्य-विडम्बनानि ।
रूढावरूढाश्चपलं वटेषु, सुग्रीव-सैन्यानिव नाटयन्ति ॥६५॥

माणिक्य के सौन्दर्य को तिरस्कृत करने वाले, फलों को कई वार खा कर, जल्दी से वट-वृक्षों पर चढ़ने उतरने वाले बालक, मानों सुग्रीव के सैनिकों का अभिनय कर रहे हैं।

द्राक्षागुलुच्छा अवलम्बमाना बालैः सलालैरवलोक्यमानाः ।
पाशादितोऽस्मानवतार्यं मुक्तान्, कुरुध्वमित्येव वदन्ति तूष्णीम् ॥६६॥

मुँह में आते पानी वाले बालकों द्वारा देखे जा रहे, लटकते हुए अङ्गूरों के गुच्छे, 'इस फांसी से हमें उतार कर मुक्त करो' मानो चुपके से यह कह रहे हैं।

तपर्त्तु तापाचमनाय शश्वद्, वाटेषु वासाकुसुमानि दूरम् ।
विजृम्भमाणानि लसन्ति मन्ये, सिंहाननत्वं चरितार्थयन्ति ॥६७॥

वाड़ों में निरन्तर ग्रीष्म ऋतु की गरमी को पी जाने के लिए मुँह खोले, चमकदार वासा (पं० वसूटी) के फूल, मानों अपने 'सिंहानन' नाम को चरितार्थ कर रहे हैं।

छत्रं तदेतद् वरटाभटैर्यद् आरक्ष्यमाणं पटलस्य कोणे ।
धूम्रं च पीतं च सितं तथाराद्, आसक्त-सूनस्तवकत्वमेति ॥६८॥

छत्त के कोने में, भिड़ों रूपी सिपाहियों द्वारा पहरा दिया जा रहा, धूसर, पीत तथा श्वेत रंग का यह वह (भिड़ों का) छत्ता है, जो दूर से चिपके हुए फूलों के स्तवक (गुलदस्ते) सा लग रहा है।

धूतानि चूतानि च वातघातैर्, लुठन्ति वाटेषु च निष्कुटेषु ।
स्वादूनि तूतानि नयन्ति कीटी-शतानि सम्भूय च भूस्थितानि ॥६६॥

वायु के आघातों से हिलाये आम, रास्तों और बगीचियों में लुढ़क रहे हैं, और पृथ्वी पर पड़े स्वादयुक्त तूत के फलों को, सैंकड़ों कीड़ियां मिल कर ले जा रही हैं।

...तूलस्य मन्दारकशाल्मलीनां, खण्डानि डीनानि च खे शिशूनाम् ।
...विभान्त्यहो ! कौतुकदानि भस्मान्यूष्मोपदग्धाङ्कुरपत्रकादेः ॥७०॥

अहा ! आकाश में उड़ने वाले, आक तथा सेमर की रूई के टुकड़े, बालकों को आनन्द देते हुए, गरमी से जले हुए अङ्कुर तथा पत्तों आदि की भस्मों जैसे लग रहे हैं।

...तप्तालिकत्वाद् रविणाध्वगानां, भ्रान्तान्धकाराकुलचेतनानाम् ।
...खद्योतकालातकचक्रकल्पं, दृशोः पुरः प्रस्फुरतीव किञ्चित् ॥७१॥

सूर्य द्वारा माथे के तप जाने के कारण, भ्रान्त तथा अन्धकार से व्याकुल बुद्धि वाले पथिकों की आँखों के आगे, जुगनू तथा उल्का-चक्र जैसा कुछ स्फुरित होने लगता है।

...भालं विभुग्नाङ्गुलिनानुवारं, सम्मृज्य चोष्ठावपि लेलिहानाः ।
...नासाग्रनिःष्यन्दिनिदाघनीरा द्रवन्ति छायामभिलक्ष्य पान्थाः ॥७२॥

टेढ़ी की गई उंगली से वार-वार माथे को पोंछ कर, ओठों को भी चाटते हुए, और नाक के अग्रभाग से चू रहे पसीने के जल वाले पथिक, छाया की ओर लक्ष्य कर भागे जा रहे हैं।

...तुषैर्बुसैश्चाप्लुतपक्ष्ममालाः, घर्माम्भसः पाटलगण्डलेखाः ।
...छायाविहीनाः कृषिका दिनार्धे, स्वर्लोकसौख्यानि खले स्वदन्ते ॥७३॥

धानों के छिलकों तथा तूड़ी से भरी बरोनियों वाले, पसीने से तर, लाल हुए गण्डस्थलों से युक्त दोपहर के समय छायारहित किसान, खलिहान में, स्वर्लोक के सुखों का आस्वाद लेते हैं।

लालाविलोपाच्च विले गलस्य, शुष्कं मुखं चौष्ठनसाद्यमन्तः ।
एवं शनैः शोषमशेषमाप्तं, न त्वार्द्रतां मुञ्चति हन्त ! देहम् ।।७४।।

गले के बिल में लार के सूख जाने के कारण, मुख, ओठ और नाक आदि अन्दर से सूख गये हैं। इस प्रकार धीरे धीरे सब कुछ शोष को प्राप्त हो गया है, किन्तु हाय ! शरीर गीलेपन को नहीं छोड़ रहा है ।

महाम्बरीषास्य इव स्थितस्य, स्वाङ्गादपि ग्लानिमुपागतस्य ।
चोलादिचैलस्तिमितत्वहेतोः, स्नातस्य वा स्विन्नतनोर्न भेदः ।।७५।।

मानो बड़ी भट्टी के मुँह में स्थित, अपने अंग से भी ग्लानि को प्राप्त हुए, कमीज आदि कपड़ों के भीग जाने के कारण, नहाये हुए या पसीने से आर्द्र शरीर वाले में, कोई फर्क नहीं (लगता) ।

भूमौ च भूम्ना धुतधूलिधूमैः, पर्याकुलायां विकलेन्द्रियाणाम् ।
व्याघुट्यते श्वासमरुच्च प्राणाः, प्रायो जिहासन्ति तनूं प्रसह्य ।।७६।।

उड़ाई गई धूलि रूप धूओं से, पृथ्वी के अधिकतया व्याप्त हो जाने से व्याकुल इन्द्रियों वाले लोगों का दम घुट रहा है, और प्राण प्रायः ज़बरदस्ती देह को छोड़ देना चाहते हैं ।

बलात्कुकूलानलपातितं वा, संक्वथ्यमानं विकटे कटाहे ।
आध्मायमानं यदि वापि मुष्यामात्मानमत्राकलयन्ति लोकाः ।।७७।।

इस (ग्रीष्म) में लोग अपने आप को, बलपूर्वक तुषाग्नि में गिराया गया, या विकट कड़ाहे में उबाला जा रहा, अथवा कुठाली में पिघलाया जा रहा, समझते हैं ।

खल्वाटशीर्षे प्रगुणाः खरांशोः प्रदीपवर्ति-प्रतिबिम्ब-भासः ।
वेधं न कुर्वन्ति करास्तदस्मिन्, पदे ध्रुवं ते चिकिले स्खलन्ति ।।७८।।

गंजे के सिर पर दीपक की लौ की भान्ति प्रतिबिम्बित चमक वाली, तेज सूर्य की किरणें, इस में वेध नहीं करतीं । सो निश्चय से वे इस चिकने स्थान में फिसल जाती हैं ।

द्विषन्ति शीतेऽम्बु यदेव लोका ग्रीष्मे तृषा धन्वनि दूयमानाः ।
तस्यैव नाम्नोऽमृतजीवनादेरन्वर्थतां वास्तविकीं विदन्ति ।।७९।।

सर्दी में जिस पानी से लोग द्वेष करते हैं, ग्रीष्म में, मरुस्थल में प्यास से
पीड़ित लोग, उसी (पानी) के 'अमृत' 'जीवन' आदि नाम की असली सार्थकता
को समझते हैं।

उद्‌गीर्णगोलाकृतकम्प्र-जिह्वाः, फेनाम्बुलिप्यन्मुखशिक्यजालाः।
क्रमेलका गर्जिततर्जितैः स्वैः, घोषाध्वसूत्त्रासितपौरपान्थाः॥८०॥

बाहर निकाली और गोल की गई काँपती जीभों वाले, झाग और पानी
लिप रहे मुँह के छीके के जाल से युक्त, गाँवों के रास्तों में, अपने गर्जन-
र्जन से डरा दिये हैं शहरी मुसाफ़िर जिन्होंने, ऐसे ऊँट। -

त्या मिमाना इव वातवेगं, ग्रीष्मोष्मणा तप्ततरां मरूर्वीम्।
ङ्केरुहाणामिव पत्रपुञ्जैरास्तृण्वते ते परितः पदाङ्कैः॥८१॥

गति द्वारा मानो वायु के वेग को मापते हुए वे (ऊँट), चारों ओर पैरों
चिन्हों द्वारा, ग्रीष्म की गर्मी से अति तप्त, रेगिस्तान की भूमि को, मानों
मलों के पत्तों के समूहों से ढक देते हैं।

ा प्रदोषोल्लसिता चिरेण, स्रस्तोऽस्तमस्ताच्च मरीचिमाली।
ीस्वरो वाटतटीकुटेषु, दाहो दिशां दूरमपैति नाहो!॥८२॥

देर से रात प्रदोष काल द्वारा प्रकाशित हो चुकी है, अस्ताचल के सिर
सूर्य गिर चुका है, और रास्तों के किनारों तथा वृक्षों पर झींगुरों की आवाज़
रही है, अहो! तो भी दिशाओं का दाह दूर नहीं हो रहा है।

! क्षुल्लकोल्कापतनानि यद्वा, खेऽलातचक्राणि विकल्पयन्तः।
ोतका भान्ति तपाहतानामात्मान आ प्राणभृतां प्रयान्तः॥८३॥

हाय! आकाश में छोटी-छोटी उल्काओं के गिरने अथवा अलातचक्रों का
पैदा करते हुए जुगनू, गरमी द्वारा मारे जा रहे जीवों की, चारों ओर जा
आत्माओं से लग रहे हैं।

तानि तल्पास्तरणानि तोयैः सिक्तानि संवेशसुखाय नक्तम्।
नैः शनैः शोषमुपेत्य दाहात्, स्वेदैः पुनः क्लेदमहो! भजन्ते॥८४॥

रात को निद्रासुख के लिए, पानियों से सिक्त की गईं, तपी हुईं बिस्तरों
चादरें, धीरे-धीरे गर्मी द्वारा सूख कर, आश्चर्य है, पसीनों से फिर गीलेपन
प्राप्त हो जाती है।

देहोपदाहो निशि चीयते हा !, द्योतेन दीपस्य तनीयसापि ।
आचन्द्रशालाभ्य उपैति कर्णौ, सुराधिकण्ठोत्थ-झलज्झलेति ॥८५॥

हाय ! दीपक के छोटे से भी प्रकाश से शरीर की गरमी बढ़ रही है। चन्द्रशालाओं से चारों ओर, सुराहियों के कण्ठों से उठने वाली, 'झलझ (ध्वनि) कानों में आ रही है।

जाते निशीथेऽपि च जृम्भमाणाः, 'पयः पयो हे' ति पुनर्ब्रुवाणाः ।
तोतुद्यमाना इव तूलदाहं, हा हन्त ! तल्पेषु लुठन्ति लोकाः ॥८६॥

आधी रात होने पर भी जँभाईयां लेते हुए, वार-वार 'हाय ! पानी-पा इस प्रकार बोलते हुए, मानों रूई की आग से पीड़ित किये जा रहे लो हा हन्त ! बिस्तरों पर तड़प रहे हैं।

सुदुर्लभस्वापहराः स्वभावात्, कर्णेषु किञ्चित्करुणं रुवन्तः ।
अनारतं मत्सरिमत्सरा हा !, यतस्ततस्तात ! तनूं तुदन्ति ॥८७

स्वभाव से ही, अति कठिनाई से आने वाली नींद को हरने वाले, का में कुछ करुण पुकार करते हुए ईर्ष्यालु मच्छर, हाय प्यारे ! निरन्तर इध उधर से देह को दुखी कर रहे हैं।

आकृष्यते प्रावरणं ततश्चेच्छनैस्तदेतो मशका दशन्ति ।
ततो विशन्ति क्रियतेऽन्यथा चेद्,एवं विषीदन्ति निशास्वनीशाः ॥८८

यदि उधर से चादर खेंचते हैं तो धीरे से इधर से मच्छर काटते हैं यदि इस से उल्ट किया जाता है (यानि इधर से चादर खैंचते हैं) तो उधर घुस जाते हैं। इस प्रकार रातों में असमर्थ (मजबूर) हुए (लोग) दुखी रहे हैं।

कर्णे च कण्ठे च कपोलकादौ, जिघांसया संदशतां मशानाम् ।
स्वयं ददानाः सुदृढां चपेटां, वन्ध्यप्रयासाः शयिता भवन्ति ॥८९॥

कान, गले और गाल आदि पर काटने वाले मच्छरों को मारने की इच्छ से, खुद ही दृढ़ चपेटा मारते हुए सोने वाले (लोग), व्यर्थ प्रयत्न वाले हो जाते हैं।

स्मेरं शिरीषस्य सुमं समन्तात्, स्वैरं समीरेण समीरितं सत् ।
क्षोण्यां क्षणाय क्षणदे विभाते, स्मरं स्मयं स्मारयतीव सुप्तम् ॥९०॥

चारों ओर धीरे से, वायु द्वारा हिलाया जाता हुआ, मुस्कान भरा सिरस का फूल, पृथ्वी पर क्षण के लिए उत्सव (आनन्द) देने वाले प्रभात काल में, सोये हुए काम देव को मानो अपना अभिमान याद करा रहा है।

तीरे तडागस्य तले तरूणां, कौपीनमात्रं परिधाय दीनः।
व्यावर्तयन् दाम पुनः पयांसि, परामृशन् वेत्ति तृणं तपर्त्तुम् ॥६१॥

जौहड़ के किनारे वृक्षों के नीचे, दीन सिर्फ़ कौपीन को धारण कर रस्सी वाटता हुआ, और वार-वार पानियों को छूता हुआ, ग्रीष्म ऋतु को तिनका समझता है।

मग्नांशुकाः स्वेदभरेण देहे, बाला विलासोत्कलिकासहस्रम्।
कुर्वन्ति यूनामिति शाधि शश्वद्, निदाघ! लोकं शरदां शतानि ॥६२॥

पसीने के समूह से शरीर में चिपके हुए कपड़ों वाली युवतियां, नौजवानों में हज़ारों विलास एवं उत्कण्ठाएं पैदा कर रही हैं, इसलिए हे ग्रीष्म! दुनियां में सैंकड़ों वर्षों तक निरन्तर शासन करो।

इति श्रीश्यामदेव-पाराशर-कृते ऋतुचक्रे ग्रीष्मवर्णनं पर्यवसितम्।

—प्रावृष-प्रौढिमा—

मेदिनी मेदुरा पांसुपूरैराविरभावयत्।
विष्वङ्मरीचिकोच्छ्वासैरधिकामाधिमात्मनः ॥१॥

धूलिसमूह से मोटी हुई पृथ्वी, चारों ओर, मृगतृष्णा रूपी आहों द्वारा अपनी अधिक मनोव्यथा को प्रकट कर रही थी।

निराशाः पर्यवर्तन्त मृगाः पल्वलयायिनः।
खगाः पर्यपतंस्तापतृषोन्मीलितचञ्चवः ॥२॥

जौहड़ों को जाने वाले पशु (मृग) निराश लौट रहे थे। गर्मी तथा प्यास के कारण खोली चोंचों वाले पक्षी, चारों तरफ़ उड़ रहे थे।

'पयः पयः' इति प्रायः करुणं क्रन्दतोऽभवत्।
उपयाचितसाहस्री चातकस्य फलोन्मुखा ॥३॥

'पानी-पानी' प्रायः इस प्रकार करुण-क्रन्दन करने वाले पपीहे की हजा मनौतियां फल देने को तय्यार हो गईं।

दत्तस्तापाय यः शापः कलालापः कलापिनाम्।
तारः स एव मल्लारः प्रायः परिणमत्यहो ! ॥४॥

ग्रीष्म को दिये गये शाप जैसा, जो मोरों का मधुर आलाप था, अहा वही ऊँचे स्वर वाले प्रायः मल्हार राग के रूप में बदलता जा रहा है।

क्रोशन्तीभिश्च कन्याभिः कानने क्रियते क्वचित्।
पट-पुत्तलिका-दाहः पुरुहूत-प्रसत्तये ॥५॥

इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए, रोती (सियापा करती) हुई कन्याओं द्वारा, वन में कहीं पर कपड़े की गुड़िया का दाह किया जा रहा है।

सशीतशान्तिशातस्य हर्त्तुः सन्तापसन्ततेः।
परिवर्तयितुः पुंसां दैवचक्रस्य साम्प्रतम् ॥६॥
राज्यं पश्यत प्रक्रान्तम् ऋतूनां चक्रवर्तिनः।
इतीव सूचयन् जातः परिवेषी शशी निशि ॥७॥

अब, शीत, शान्ति तथा सुख-युक्त, सन्ताप-समूह को हरने वाले, पुरुषों के भाग्य-चक्र को बदल देने वाले। ऋतुओं के चक्रवर्त्ती का राज्य शुरू हो गया है, मानों यही सूचित करता हुआ चाँद, रात को चक्र (परिवेष) युक्त हो गया।

पथि प्रावृड्यशोवर्ण-रेखाविभ्रमकारिणः।
धृताण्डवदनास्तूर्णं तोयदागमशंसिनः ॥८॥
पिपीलाः क्षेत्रकोणस्थविलादेतेऽविलम्बितम्।
निर्यान्ति किं निदाघाय गालयो वसुधामुखात् ?॥९॥

मार्ग में, पावस के यश के अक्षरों की रेखाओं की भ्रान्ति पैदा करने वाले, मुखों में (अपने) अण्डों को धारण किये, शीघ्रतया मेंह आने की सूचना देने वाले, ये चिंउटे, खेत के कोने में स्थित विल से निकल रहे हैं। क्या ये पृथ्वी के मुख से ग्रीष्म ऋतु को गालियां निकल रही है ?

कृत्तानि कीर्णानि च काककीरैः, फलानि पल्ल्याः पथि पिप्पलानाम्।
नयन्त्यजस्रं लघु कीटपाली, ग्रीष्मावसानस्य विभाति लेखा ॥१०॥

गाँव के मार्ग में कौवों तथा तोतों द्वारा काटे गये और बिखरे हुए पीपलों के फलों को, निरन्तर शीघ्रतया ले जाती हुई चिउंटियों की पंक्ति, ग्रीष्म के अन्त की लकीर लग रही है ।

उच्चावचं वीजितपक्षजालाः, स्नान्तस्तपोत्तापित-पांसुपूरे ।
कुर्वन्ति काकाः किमु तत्र योगं, स्नानाम्बु देहीति दिशन्ति वेन्द्रम् ?
॥११॥

अनेक प्रकार से पक्ष-समूह को हिलाने (फड़फड़ाने) वाले, ग्रीष्म द्वारा सन्तापित धूलि-समूह में नहाते हुए कौवे, क्या जादू-टोना कर रहे हैं, या 'नहाने को पानी दो' इस प्रकार इन्द्र को ज़ाहिर कर रहे हैं ?

आदाय वदनेष्वण्डान्येता यान्ति पिपीलिकाः ।
प्रदातुं प्रावृषे प्रायो मौक्तिकोपायनान्यहो ! ॥१२॥

अहा ! मुखों में अण्डे लिए हुए ये चिउंटियां, मानों पावस को देने के लिए मोतियों की भेंटें ले जा रही हैं ।

सद्वृत्तैः करुणाशीला इलां शीतलयन्ति ये ।
जैनास्त्वन्तः प्रविष्टास्ते वर्षावासाय साधवः ॥१३॥

जो दयाशील सच्चरित्रों द्वारा पृथ्वी को शीतल कर देते हैं, वे जैन साधु तो वर्षावास के लिए (उपाश्रयों के) अन्दर प्रवृष्ट हो गये हैं ।

लोकतापापहाराय तत एव घनाघनः ।
भूभृज्जवनिकापृष्ठादुद्ग्रीवक इवैक्षत ॥१४॥

तभी संसार के सन्ताप को दूर करने के लिए वर्षुक मेघ ने, उठाई हुई ग्रीवा वाले की भान्ति, पर्वत रूपी पर्दे के पीछे से झाँका ।

किं भानुना भुवो दाहाद् धूमभूम्नास्तृतं नभः ।
तस्य मेघमिषाऽकीर्त्या किं वा स्यात्तन्मलीमसम् ॥१५॥

क्या सूर्य द्वारा पृथ्वी के जलाए जाने के कारण, धूएं की अधिकता से नभ आच्छादित हो गया, या मेघों के व्याज से उस (सूर्य) के अपयश से वह (नभ) मलिन हुआ है ? ।

हालिकैर्हूयमानस्य हुताशस्यैव हेतिभिः ।
निर्मिता नियतं नाके धूसरा धूमयोनयः ॥१६॥

निश्चय से हल चलाने वालों द्वारा, आहुति दी गयी आग की ही लपट द्वारा, आकाश में धूसर वर्ण के बादल बनाये गये हैं।

वर्षागमोन्मदिष्णूनां गतिवैविध्यशालिनाम्।
चीचीकूचीशकुन्तानां किञ्चिच्चेतश्चुलुम्पति ।।१७।।

वर्षा के आने से उन्मत्त, अनेक प्रकार की गतियों से शोभित पक्षियों का कलरव, कुछ हृदय को आह्लादित कर रहा है।

पवने जवने जाते मेदुरे मुदिरैश्च खे।
कृषाणस्य कृशस्यापि शोणिमाऽभ्युदितो मुखे ।।१८।।

वायु के वेग-युक्त हो जाने पर और मेघों के कारण आकाश के मांसल हो जाने पर, दुबले भी किसान के मुँह पर ललाई छा गई।

मलीयश्च मलिष्ठं च खं क्रमेणाऽभ्यजायत।
सोऽयं चण्डांशुदाहेन धूम्रिमाविष्कृतो ध्रुवम् ।।१९।।

क्रमशः नभ अधिकतर तथा अधिकतम मलिन हो गया। निश्चय से सूर्य के दाह द्वारा वह यह धूसरपन पैदा किया है।

उदिते मुदिताशे तु मुदिरे मेचकोदरे।
अन्यथा भुवनं जातं भूता चान्यैव भावना ।।२०।।

प्रसन्न कर दी हैं दिशाएं जिस ने ऐसे, साँवले पेट वाले मेघ के उदित होने पर, संसार कुछ और तरह का हो गया, तथा भावना भी और ही हो गयी।

तारेण हारेण च वैद्युतेन विभूषितो वारिधरो विलासी।
विश्वासयन् वै वसुधां विरावैर् बम्भ्रम्यते वर्षवियोगवाधाम् ।।२१।।

बिजली सम्बन्धी उज्ज्वल हार से भूषित बिलासी बादल, साल भर के विछोह की पीड़ा से युक्त पृथ्वी को (अपने) गरजनों (शब्दों) से सान्त्वना देता हुआ बार-बार घूम रहा है।

विद्योतमानं चपलाकृपाणं, वलाहकोऽयं भ्रमयंश्च गर्जन्।
पलायमानं परितस्तपर्त्तुमुद्वेजयन्नाह्वयतीव भूयः ।।२२।।

यह मेघ, चमकती हुई बिजली रूपी कृपाण को घुमाता हुआ और गरजता

हुआ, चारों तरफ भागे जा रहे ग्रीष्म-काल को धमकाता हुआ वार-वार ललकार रहा है।

रजको रज्जुलम्बीनि शुष्काशुष्कांशुकान्यसौ ।
संगृह्याब्दभयात् क्षिप्रं प्रतिष्ठासुर्गृहं प्रति ॥२३॥
दन्तादन्ति चिराल्लत्तालत्ति चोत्प्लुत्य योधिनौ ।
रासभावानयत्येव कथञ्चिद् दूरदेशतः ॥२४॥

बादल के भय से शीघ्र घर जाने की इच्छा वाला वह धोबी, रस्सी पर लटकने वाले, सूखे न सूखे (गीले) कपड़ों को समेट कर परस्पर दान्तों और टांगों से, कूद कर लड़ने वाले दो गधों को दूर स्थान से, जिस किसी तरह (मुश्किल से) ले ही आता है।

रेखारूपैस्तथा क्रौञ्चैस्तोयदस्वागताय खे ।
नियतं मूर्त्तयो नीता हारिकैरवहारताम् ॥२५॥

और आकाश में मेघों के स्वागत के लिए, पंक्ति के रूप को धारण करने वाले क्रौञ्चों (कूंजों) ने, निश्चय से (अपने) शरीरों को मनोहर कुमुदों का हार बना लिया।

प्रोषित-प्राणनाथानां स्थास्नून्यम्बूनि चक्षुषोः ।
पिशुनानि प्रमोदस्य जातान्यन्याकृतीन्यहो ! ॥२६॥

प्रोषित-भर्तृकाओं के स्थायी आँखों के जल (आँसू), प्रसन्नता को सूचित करने वाले, अहो ! और ही आकार के हो गये।

कुम्भकार्या च काक्षेण किञ्चिदाकुञ्चितभ्रुवा ।
वीक्षितो गर्जितव्याजात् कद्वदो वारिदोऽप्यसौ ॥२७॥

कुछ टेढ़ी की गयी भौंहों वाली कुम्हारी द्वारा तिरछी निगाह से देखा गया, वह मेघ भी, गरजने के बहाने बुरा बोलने वाला हो गया।

पयोदः पृथिवीं प्लुष्टां यावच्च परिरम्भते ।
तदा भिदा प्रिये ! का स्यादेकतामितयोस्तयोः ॥२८॥

हे प्रिये ! दग्ध हुई पृथ्वी को जब मेघ आलिंगन करता हैं, तब एकता को प्राप्त हुए उन में कौन सा भेद रह जाता है।

मारुतान्दोलिताम्भोदे गुरुगम्भीरगर्जिते ।

खे मथ्यमानमाभाति क्वथ्यमानं च किञ्चन ॥२९॥

वायु द्वारा आन्दोलित मेघों वाले, महान् गम्भीर गर्जन से युक्त नभ में, कुछ मथा जा रहा सा और उबाला (काढ़ा; जा रहा सा लगता है।

दूरतो मुदिरा दृष्टा मेदिन्याकाश-चुम्बिनः ।
स्थिराः केचिच्चरन्तोऽन्ये सपक्षा भान्ति पर्वताः ॥३०॥

पृथ्वी तथा आकाश को चूमने वाले, कई स्थिर और अन्य चलते हुए, दूर से देखे गये बादल पंखों से युक्त पर्वत प्रतीत होते हैं।

पर्वतैः परिरब्धाश्च साश्रुतोयाः पयोमुचः ।
भासन्तेऽभ्यागतास्तेषां भ्रातरो गिरयश्चिरात् ॥३१॥

पर्वतों से आलिंगित, आँसुओं रूपी पानी वाले मेघ, उन (पर्वतों) के देर बाद आये हुए पर्वत भाई मालूम होते हैं।

शम्पाकम्पे च निर्घोषे घोरे साऽन्तर्नयत्यहो ! ।
कथं वधूः बलाद् बालान् पीनश्रोणीपयोधरा ॥३२॥

बिजली के काँपने और भयंकर कड़कड़ाहट होने पर, अहो ! वह स्थूल श्रोणी और वक्षःस्थल वाली वधू, किस प्रकार बलपूर्वक बच्चों को अन्दर ले जा रही है।

विद्युच्छुरी वासववैद्यकेन प्रायोजि प्रायोऽद्य पयोधराङ्गे ।
धारानिपाते प्रवहन्ति नद्यो यतो हि रक्ताम्बुधरा धरायाम् ॥३३॥

ऐसा लगता है कि इन्द्र रूपी वैद्य ने मेघ के शरीर पर आज विद्युत् रूपी छुरी (नश्तर) का प्रयोग किया है, क्योंकि धारासम्पात होने पर पृथ्वी पर लाल पानी को धारण करने वाली नदियां वह रही हैं।

पृषन्ति पूर्वाणि च पांसुपूरैस्तारापथे प्राप्तपिशङ्गिमानि ।
पतन्ति पृथ्वीं परितः पयोदात्, कृत्तात्करण्डादिव माक्षिकाणि ॥३४॥

आकाश में, धूलि-समूहों के कारण, पीलेपन को प्राप्त हुई पहली बूंदें, मेघ से पृथ्वी के चारों ओर, ऐसे गिरती हैं जैसे काटे गये छत्ते से मधु (शहद की बूँदें गिरती हैं)

हरेर्निदाघें प्रखरैः कराग्रैर्, विदीर्ण-शुष्यच्चिकिलोदराणाम् ।
वर्षाम्बु जातं लघु पल्वलानां, क्षतोपलेपप्रतिमं क्षणेन ॥३५॥

ग्रीष्म में सूर्य की तीक्ष्ण किरणों के अग्रभागों से फटे और सूखे कीचड़ को धारण करने वाले जौहड़ों के लिए शीघ्र वर्षा का पानी, क्षण में घाव की मल्हम के समान बन गया।

भेकैरनेकैः पृथुलैः पिशङ्गैः, सर्वत्र संगत्य जलस्थलेषु।
आध्मातकण्ठैः सविरामतालं, जेगीयते शक्रमहावदानम् ॥३६॥

अनेक, स्थूल, पीले और कण्ठ को फुलाने वाले मेंढकों द्वारा, सभी जगहों पर जलस्थलों में मिलकर, विराम ताल के साथ, इन्द्र के किये गये महान् कर्म का, वार-वार गान किया जा रहा है।

नभःश्रिया शक्रशरासनाख्यां, मालां शुभां श्यामघनस्य कण्ठे।
आरोप्य सौभाग्यमकारि भूयो, नवं समुत्कण्ठितया चिरेण ॥३७॥

आकाश-लक्ष्मी ने इन्द्रधनुष नामक, मङ्गलमयी माला को, श्याम-घन के गले में पहनाकर, चिरकाल से उत्कण्ठित हुई ने, फिर अपने सुहाग को नया कर लिया।

कूलेषु कासारनदीनदानां, निरूप्य राज्यं वकदाम्भिकानाम्।
वैराग्यभाजः सरला मरालास् तपःस्थलं मानसमभ्युपेताः ॥३८॥

तालाबों, नदियों और नदों के तटों पर, छलिये वगुलों का राज्य देखकर वैराग्य को प्राप्त हुए सरल-प्रकृति हंस, तपस्या के स्थान, मानस सरोवर को चले गये।

पयांसि पाथोधिपयस्विनीनां पीतानि प्राक् पल्वलपुष्कराणाम्।
उद्गारघोषा विकिरन्ति विष्वग्, विहारिणो वारण-वारिवाहाः ॥३९॥

समुद्र नदियों, जौहड़ों और झीलों के पहले पिये गये पानियों को, डकारने जैसे गर्जन से युक्त, चारों ओर विहार करने वाले, हाथियों जैसे बादल, विखेर रहे हैं।

आकाशदेवैरभिमन्त्रितेन, क्षितौ जलेनाद्य समुक्षितेन।
यन्नामशेषं हरितत्वमासीत्, सजीवितं तत् पुनरेव जातम् ॥४०॥

आज, आकाश के देवताओं द्वारा अभिमंत्रित, पृथ्वी पर छिड़के गये पानी से, जो हरितिमा नाम-मात्र बाकी रह गई थी, वह फिर से प्राणयुक्त हो उठी।

निकषे हेमलेखेव कृष्यमाणाऽञ्जसाऽम्बुदे।

कृष्णे तेजीयसी विद्युदमन्दस्पन्दनैः समम् ।४१।।

आन्दोल्य सर्वतः स्थास्नून्, शनकैः शीलशालिनः ।

छमण्डानां च रण्डानां कषतीवाद्य मानसम् ।।४२।।

कसौटी पर जलदी से खैंची जा रही सोने की लकीर जैसी, काले मेघ पर अधिक झिलमिल के साथ अति तेजस्विनी विजली, आज, चारों ओर धीरे से, स्थिर-बुद्धि चरित्रवान् व्यक्तियों को, झकझोर कर रँडवा (पं० छड़े) मनुष्यों औ विधवाओं के हृदयों को मानो खुजला (खरोच) रही है।

उक्तो धाराधरे चैव मृषा नूनं धराधरे ।

भेद आकारमात्रस्य धीरैर्वाग्वागुराधरैः ।।४३।।

आकारस्यैव सामान्यमेतयोस्तु विशेषतः ।

प्रेक्ष्यते पारमार्थ्येन पुम्भिः प्रत्यक्षदर्शिभिः ।।४४।।

धाराधर (मेघ) और धराधर (पर्वत) में आकार ('आ' अक्षर-) मात्र क जो फ़र्क, वाणी के जाल को धारण करने वाले विद्वानों ने कहा है, निश्च से वह झूठ है।

विशेषतया इन दोनों में आकार (आकृति) की ही तो समानता दरअस प्रत्यक्षदर्शी पुरुषों द्वारा देखी जाती है।

दृश्यते धूमिका भूम्ना दिक्षु देशे दवीयसि ।

शीतो वातश्च शूत्कारी शनैर्वाति सशीकरः ।।४५।।

दिशाओं में अति दूर प्रदेश में, अधिकता से धुन्ध दिखाई देती है, औ शीतल, शूत्कार करने वाली एवं फुहार से युक्त वायु, धीरे २ बहने लगती है

तन्यतेऽलं ततोऽनन्ते तूर्णं तोयद-सन्ततिः ।

पुरुहूतेन पाद्याद्यं पृथिव्यै च प्रदीयते ।।४६।।

तब आकाश में शीघ्रतया मेघ-समूह अत्यधिक फैल जाता है, और इन्द्र द्वारा पृथ्वी को पाद्य (अर्घ्य, आचमनीय) आदि दिया जाता है।

तपनोत्तापतृष्णासु कर्कशासु स्थलीषु च ।

पातात्प्रागेव लीयन्ते बिन्दवः स्यन्दिनोऽम्बुदात् ।।४७।।

और सूर्य की गर्मी से प्यासी, कठोर स्थलियों में, बादल से बहने वाली बूंदें, गिरने से पहले ही लीन हो जाती हैं।

प्रत्यावृत्ते प्रवासाच्च पयोदे प्रकटीकृतः ।
पुरूष्मोपधिना पृथ्व्या प्रेमरोषो मृषा किमु? ।।४८।।

मेघ के प्रवास से लौटने पर, क्या पृथ्वी ने, अधिक ऊष्मा के बहाने झूठा, प्रेम भरा रूठना प्रकट किया है ?

लोहपत्रछदिःश्वेताः क्वणन्त्यः कणिकाः क्वचित् ।
स्वादीयः किंचनावाच्यं स्फीतं गीतं वितन्वते ।।४९।।

कहीं लोहे के पत्रों की छतों पर शब्द करने वाली ये कणिकाएं (बारिश की बूंदें), स्वाद-युक्त अनिर्वचनीय, कोई लम्बा-चौड़ा गीत फैला रही है।

शुकैः काकैश्च खाद्यन्ते खण्ड्यन्ते प्रायशस्तथा ।
महानिम्बानि निम्बानि पिप्पलानि च विश्वतः ।।५०।।

चारों ओर महानिम्ब (डेक) नीम, तथा पीपल के फल, शुकों तथा कौवों द्वारा, खाये जा रहे है और प्रायः काटे जा रहे हैं।

मेदिन्यामोदिनी जाता मुदिरस्योदबिन्दुभिः ।
सुकुमाराश्च केदाराः सिक्तमूलमृदोऽभितः ।।५१।।

मेघ के जलबिन्दुओं से पृथ्वी सुगन्धित हो गयी, और चारों ओर खेत, कोमल तथा मूल तक भीगी मिट्टी वाले हो गये।

योक्त्रं गवेष्यते पोत्रं तोत्रं वा यत्र तत्र तैः ।
दूरं सदारसंतुष्यद्दारकैः कृषिकारकैः ।।५२।।

अत्यन्त, पत्नी-सहित प्रसन्न हो रहे बच्चों बाले, उन खेतिहरों द्वारा, कसने का रस्सा (पं० जोत), फाला अथवा चाबुक जहां तहां ढूंढा जा रहा है।

शीघ्रं शीशांसते फालं दीर्घं दीदांसते च सः ।
हली लब्धक्षणः कोऽद्य संजाते सति दुर्दिने ।।५३।।

आज दुर्दिन (मेघाच्छन्न दिन) हो जाने पर किस हाली को अवकाश (विश्राम का समय) है. वह शीघ्र लंबे फाल को (शीशांसते√शान्) तीखा करवाना चाहता है और (दीदांसते√दान्) सीधा करवाना चाहता है।

कृषिकस्य पदाङ्केषु निदधाना वधूः पदे ।
सा वीजाकरणव्याजाल्लावण्यं वपतीह किम्? ।।५४।।

किसान के पैरों के चिन्हों पर पैर रखती हुई (उस की) वह वहू, बी
विखेरने (गिराने) के वहाने क्या यहां लावण्य वो रही है।

शलमी वलभीदीप-कलिकां परिभूय सा।
सतीव यजते देहं प्राणेशानुयियासया ॥५५॥

वह पतंगे (परवाने) की पत्नी, वलभी के दीपक की लौ की परवाह
कर के, सती की भान्ति पति के पीछे जाने की इच्छा से, देह की आहुति
रही है।

विद्युदाराविलूनांशुर् विश्वतो वारिदावृतः।
विवस्वान् बहुधा धत्ते वराको वैभवं विधोः ॥५६॥

विद्युत्-रूपी आरी से काटी गई किरणों वाला, चारों ओर वादलों
घिरा, वेचारा सूर्य, कई वार चन्द्रमा की शोभा (वैभव) को धारण करता है।

कासारे कासरो मज्जन् काष्ठलोष्टकगालिभिः।
ताडितोऽपि न निर्याति कूलाद् ग्रामकिशोरकैः ॥५७॥

सरोवर में नहाता हुआ, किनारे पर से गाँव के लड़कों द्वारा, लकड़
रोड़ों और गालियों से ताडित किया जा रहा भी भैंसा नहीं निकलता।

स्वान्तैकान्त-निशान्ते चासमेषुः ससुखं स्वपन्।
गिरा गम्भीरया विद्युद्विलासिन्या विबोध्यते ॥५८॥

मन-रूपी एकान्त गृह में सुख के साथ सो रहा काम-देव, विद्युत्-रू
विलासिनो द्वारा गम्भीर वाणी से जगाया जा रहा है।

धुनीकूलन्धया ग्रामा आप्लावत्रसुराश्च हा!।
विनिद्रा वरिवस्यन्ति वरुणं विघ्नवारणम् ॥५९॥

नदियों के किनारे स्थित, वाढ़ से डरने वाले, हाय! निद्रा-रहित गाँव
विघ्नों को हटाने वाले वरुण की पूजा कर रहे हैं।

क्षुद्रणद्याः परं पारं करभोरुः शनैः शनैः
यन्ती चोत्थापयन्ती च क्रमशः स्वमधोंऽशुकम् ॥६०॥
प्राप्तेऽप्यल्पजले कूले तद्वदेव स्थिता वधूः।
वयःस्थैः हस्यते मन्दं मृषाकासमिषा मिथः ॥६१॥

छोटी सी नदी के दूसरे किनारों को धीरे-धीरे जाती हुई, और क्रमशः अपने अधोवस्त्र को ऊपर उठाती हुई, छिछले पानी वाले तट के आ जाने पर भी, वैसे ही खड़ी हुई करभोरु वहू का, धीरे-धीरे परस्पर झूठी खांसी के बहाने युवकों द्वारा उपहास किया जा रहा है।

परस्पराश्लिष्टकुलालकीट-द्वन्द्वानि दृष्ट्वा पथि पारदेश्याः।
आपूरिता उत्कलिकासहस्रैर्, गृहाण्यवाप्तुं सततं द्रवन्ति ॥६२॥

आपस में आलिङ्गत कुम्हार-कीड़ों के युगलों को रास्ते में देख कर, हज़ारों उत्कण्ठाओं से पूर्ण परदेशी, घर पहुंचने के लिए, निरन्तर भागे जा रहे हैं।

स्मरन् प्राणेश्वरीं पान्थो जानुदघ्ने जले स्थितः।
सरितो रंहसा लुप्यद्-द्राक्पादतलवालुकः ॥६३॥
क्रमेलकल्पकल्लोलान् मध्येधारं निरूपयन्।
पुनः पुनः प्रसूतानि पटेनाश्रूणि प्रोञ्छति॥
मैतत्पातेन वृद्धिः स्याद् वेगस्येतीव शङ्कितः ॥६४॥

प्राणेश्वरी को याद करता हुआ, घुटनों तक गहरे पानी में स्थित, नदी के वेग द्वारा जल्दी-जल्दी लुप्त हो रही पैरों के नीचे की रेत वाला, धारा के मध्य में ऊँटों जैसी बड़ी लहरों को देखता हुआ पथिक, वार-वार उमड़ने वाले आँसुओं को, कपड़े से पोंछ रहा है, मानो इस लिए शङ्कित, कि कहीं इन (आँसुओं) के गिरने से (नदी के) वेग की वृद्धि न हो जाय।

क्षुम्पा इवावभासन्ते विप्रकृष्टाद् वकाः स्थले।
कुद्मलाः कुमुदानां च वका भान्ति स्थिला जले ॥६५॥

दूर से मैदान में, वगुले खुंब से लगते हैं और पानी में कुमुदों के मुकुल, खड़े वगुले प्रतीत हो रहे हैं।

सति सीकरसम्पाते ते जङ्गम-कुटीधराः।
प्रचलाः पण्यवीथीषु ग्राहका न, वलाहकाः ॥६६॥
चञ्चलाचन्द्रहासेन पुरुहूतेन पातिताः।
येऽचलायां लुठन्तीमे शतशः शकलीकृताः ॥६७॥

बूंदाबूंदी होने पर, छतरियों को धारण करने वाले, बाज़ारों में चलते

फ़िरते, वे गाहक नहीं, वरन् मेघ हैं, जो कि इन्द्र द्वारा विद्युत्-रूप तलवार से सैंकड़ों टुकड़े किये गये, पृथ्वी पर गिराये गये, तड़प रहे हैं।

चुम्बद्भिर्भूयशो भूमिं यद् गण्डूपदमण्डलैः।
क्रियन्ते चिकिले लेखाः प्रशस्तिः सा पयोमुचाम् ।।६८।।

वार-वार भूमि को चूमने वाले केंचुओं द्वारा, कीचड़ में जो लकीरें खेंची जा रही हैं, वह मेघों की प्रशस्ति है।

करकूर्चोपलिप्ताश्च चित्रकारेण भानुना।
मेघा हेममया रूप्य-मया लोहमयाः क्वचित्। ६९।।

चित्रकार सूर्य द्वारा, किरण-रूपी कूची से लीपे गये मेघ, कहीं सुनहले, रुपहले और कहीं लोहमय हो जाते हैं।

रभसाद् व्याप्नुवानानां खं घनानां रवश्रवात्।
निशीथे मूकिमालीने जाते कोलाहलाकुले ।।७०।।
लघु मञ्चकरैर् वेगात् स्कन्धालम्बित-विष्टरैः।
निद्रेषन्मुद्रिताक्षत्वात् पथि पातित-पात्रकैः ।।७१।।
विचलच्चरणैरन्तःशालं शीघ्रं विविक्षुभिः।
गालिदानेन बोध्यन्ते शिशवो गृहमेधिभिः ।।७२।।

वेग से नभ को व्याप्त करने वाले मेघों के शब्द को सुन कर, चुप्पी में डूबे हुए निशीथ के, शोर युक्त हो जाने पर, हल्की चारपाईयों को हाथ में लिए वेग से क़न्धों पर लटकाए विस्तरों वाले, नींद के कारण कुछ मुँदी आँखों के होने के कारण, रास्ते में गिरा दिये हैं बर्तन जिन्होंने ऐसे, डगमगाते पैरों वाले, शीघ्रतया कमरे में घुस जाने की इच्छा वाले गृहस्थों द्वारा, गालियां देकर बच्चे जगाये जा रहे हैं।

कपोतानां विलासेन प्रेयसीमनुधावताम्।
पादाङ्कैर्मुद्रितग्रामपथा पृथ्वी च पिच्छिला ।।७३।।
विप्रयुक्ताध्वनीनानां दीनानां प्राणहारिभिः।
भाति शृङ्खलसङ्काशैः स्मरपाशैरिवास्तृता ।।७४।।

विलास से प्रेयसियों के पीछे भागने वाले, कपोतों के पंजों के चिन्हों से अंकित, ग्रामपथों वाली और फिसलन युक्त पृथ्वी, वेचारे विरही वटोहियों के

प्राणों को हरने वाले, सांकलों जैसे, मानों काम के पाशों से आच्छन्न लग रहो है।

घनवल्ली-विलासेन त्वरितं तन्यतेऽभितः।
सितिमा पोतिमा क्वापि कृष्णिमारुणिमा क्वचित् ।७५।।

विजली के चमकने से शीघ्र चारों ओर शुक्लता, पीतिमा, कहीं कृष्णता और कहीं अरुणता फैलाई जा रही है।

शितैः शीततरांशोश्च विक्षताद् रोप-रश्मिभिः।
नापः शोणाः क्षरन्त्यद्रेः परं रक्तपरम्पराः ।।७६।।

सूर्य की तीक्ष्ण, वाणों जैसी किरणों से ज़खमी किये गये पर्वत से, पानी नहीं वह रहे, अपितु रक्त-धाराएं (वह रही) हैं।

खे तमोमणयो रात्रौ चाकचिक्येन चारिणः।
स्वान्तानि भान्ति यान्तीव प्रियान्वेषाय प्रेयसाम् ।।७७।।

नभ में रात को झिलमिल घूमने वाले जूगनू, प्रेयसियों की तलाश में जाते हुए प्रेमियों के मन से लग रहे हैं।

कूटे किरीट-कल्पेन कार्मुकेण शचीपतेः।
भूतो ऽन्वर्थाभिधो भूभृत् शोभाशाली शिलोच्चयः ।।७८।।

चोटी पर मुकुट जैसे इन्द्र-धनुष से शोभा-युक्त पर्वत, सार्थक नाम वाला 'भूभृत्' (राजा तथा भूधर) बन गया।

शुकशूकरकाकेभ्यः शल्यकीभ्यश्च साध्वसात्।
सस्यस्थलीषु पात्यन्ते गुलिका गोफणाधरैः ।।७९।।

शुकों, सूअरों, कौवों तथा सेहों के भय से, गोफन (गोपिया) धारण करने वालों द्वारा, फसलों के खेतों में ढेले (गोले) गिराये जा रहे हैं।

चूडाचुम्बीनि चाम्बूनि शालीनां स्युर्यथा यथा।
क्षेत्रिणोऽस्रसहस्रेषु तथा नेत्रे निमज्जतः ।।८०।।

जैसे-जैसे पानी, शालि-धान्यों की शिखाओं को चूमने वाले होते जा रहे हैं, वैसे ही खेतिहर के हज़ारों आंसुओं में, नेत्र डूबते जा रहे हैं।

विद्युत्खड्गादिव त्रस्नुः कृतागाः किमु वर्करः।

मूकः कटकुटीकोणे सञ्चिताकुञ्चिताङ्गकः ? ॥८१॥

मानो विद्युत्-रूपी खड्ग से डरा हुआ क्या किये हुए अपराध वाला बकरा, चुप, तिनकों की झोंपड़ी के कोने में, इकट्ठे और टेढ़े किये अंगों वाला है ?

उत्पुच्छः कीलकं भङ्क्त्वा क्वापि वत्सः पलायितः ।
कुर्याच्चक्रनितम्बा किं हा ! ऽऽसारे सहसागते ॥८२॥

उठाई पूंछ वाला बछड़ा, कीले को तोड़कर भाग गया, अचानक मूसलाधार वर्षा आ जाने पर, हाय ! चक्र की भान्ति घूमते नितम्बों वाली क्या करे ।

किं मग्नांशुकमूर्तिः सा सहस्त-स्वस्तिकस्तनी ।
स्तनयित्नुध्वनेर्भीता शीताद्वा कम्पते वधूः ? ॥८३॥

शरीर के साथ जुड़े कपड़ों वाली, स्वस्तिकाकार हाथों से ढके स्तनों वाली वधू, क्या मेघों के शब्दों से डरी हुई अथवा शीत के कारण काँप रही है ?

बाला वेश्मप्रणालस्य वेगवद्वृष्टिवारिणः ।
अधःस्थाः स्नान्ति नृत्यन्तः स दूरात्खलतिर्गतः ॥८४॥

वेगयुक्त वृष्टि के जल वाले, घर के परनाले के नीचे स्थित, नाचते हुए बच्चे नहा रहे हैं, वह गंजा दूर से चला गया।

विद्रवन्ती च बालासौ विशिखाम्बुनि वार्यते ।
जनन्या 'ऽलमलं रण्डे !' क्रोशन्त्येति मुहुर्मुहुः ॥८५॥

गली के पानी में दौड़ती हुई वह लड़की, "अरी राँड बस करो' इस प्रकार वार-बार गालियां दे रही माता द्वारा रोकी जा रही है ।

स्यान्नूनं निहतो नाके वृत्रः कश्चन वज्रिणा ।
यस्यासृग्बिन्दवो विष्वगिन्द्रगोपमिषा स्थिताः ॥८६॥

निश्चय से नभ में इन्द्र ने कोई वृत्र मारा है, जिसके रक्त की बूंदे, वीर बहुटियों के वहाने चारों ओर पड़ी हुई हैं ।

कृतोऽवाङ्मुख इन्द्रेण करुणावरुणालयः ।
भरिता हरितिम्ना च परितो हरितो द्रुतम् ॥८७॥

इन्द्र ने (अपनी) दया का सागर, औंधे मुँह वाला कर दिया. और चारों

और शीघ्रता से दिशाएं हरियाली से भर उठीं।

श्यामलान्तर्मुखैर्बालैस्तलस्थैः फलपातकः।
सिक्त-जाम्बवशाखस्थः सावधानं सखेक्ष्यते ॥८८॥

गीली जामुन की शाखा पर बैठा हुआ, फल गिराने वाला मित्र, अन्दर से काले हुए मुँहों वाले, नीचे खड़े बालकों द्वारा, सावधानता से देखा जा रहा है।

प्रीतिस्फीतैस्तथा गीतैर् लोला दोलासु बालिकाः।
प्रकिरन्त्योऽपि पीयूषं परितश्च प्रवासिनः॥
पान्थान् प्रेङ्खोलित-प्राणान् प्राय आपादयन्ति हा! ॥८९॥

तथा हिण्डोलों पर चञ्चल बालिकाएं, प्यार-भरे गीतों द्वारा चारों ओर अमृत, बिखेरती हुईं भी, हा! प्रवासी पथिकों को प्रायः डाँबाडोल हो रहे प्राणों वाले, बना देती हैं।

प्रतोलीपातिपानीयाः प्रणालास्तोरणा इव॥
आसारे मुसलासारे पान्थ-स्वागतकारिणः ॥९०॥

मूसलों के आक्रमण जैसे, धारा-सम्पात होने पर, गली में गिर रहे पानी वाले परनाले, पथिकों का स्वागत करने वाले तोरणों जैसे हैं।

निर्यान्ति स्थलरन्ध्रेभ्यश्, शलभानां शतानि यत्।
गम्भीर-गर्जितव्याजात् प्रष्टुकाममनामयम् ॥९१॥
प्रेयांसं प्रेक्ष्य पाथोदं विरहे चिरसञ्चिता।
संकल्पसन्ततिः सोर्व्या प्रायशः प्रकटीकृता ॥९२॥

मैदान के छिद्रों में से जो सैंकड़ों पतंगे निकल रहे हैं, वह गम्भीर गर्जन के बहाने कुशलता पूछने की इच्छा वाले प्रेमी मेघ को देख कर, पृथ्वी द्वारा विरह में, चिर-काल से इकठ्ठे किये गये संकल्पों की पंक्ति मानो प्रकट की गई है।

मेघ-मालामयं वासो वसानो वासरोऽसितम्।
वस्तुतो वासतेयीव बहुशः प्रतिपद्यते ॥९३॥

कई वार, मेघ-माला-रूपी काले वस्त्र को धारण करने वाला दिन, वस्तुतः रात जैसा ही बन जाता है।

बालविद्रावितैर्विष्वक् प्लवमानैस्तथा प्लवैः ।

तपःपित्तेन पीताङ्गैर् गीयते घनगौरवम् ॥९४॥

बच्चों द्वारा भगाये गये एवं चारों ओर कूद रहे, गर्मी रूपी पित्त के कारण पीले हुए शरीरों वाले, मेंढकों द्वारा, मेघों का गौरवगान किया जा रहा है।

केदारा एव कासाराः सृतयः सरितोऽभितः ।

रसासौभाग्य-सम्भूते जीमूते सति वर्षति ॥९५॥

पृथ्वी के सौभाग्य-रूप मेघ के बरसते होने पर, चारों ओर खेत ही तालाब वन गये और मार्ग नदियां ।

गुरवो नगरग्रामा विश्वतो वारिणा वृताः ।

द्वीपा इवासमीपस्था अन्तरीपाश्च भान्त्यहो ! ॥९६॥

चारों ओर पानी से घिरे, बड़े २ नगर तथा ग्राम, अहो ! दूरस्थित द्वीप तथा अन्तरीप से लगते हैं।

काननाकारतां याते वारिदे वातरंहसा ।

कतिधाकर्ण्यते प्रौढं प्राज्यं पारीन्द्रगर्जितम् ॥९७॥

वायुवेग से मेघ के, वन जैसी आकृति के वन जाने पर, कई वार बहुत ऊंचा शेर का गर्जन सुनाई देता है।

त्रस्नुः केदारभङ्गाच्च तन्वन् जङ्घालतां हली ।

धृत्वा कुठारकुद्दालौ यात्यासारार्द्रकञ्चुकः ॥९८॥

खेत के टूट जाने से डरता हुआ, लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ, धारासम्पात से भीगे चोले वाला किसान, कुल्हाड़ा और कुदाल लिये जा रहा है।

गोधिकायां प्रविष्टायां जलजन्तु-जिघत्सया ।

पल्वले पङ्किले दूरं द्रवन्ति दर्दुरा दरात् ॥९९॥

कीचड़-युक्त जौहड़ में, जल-जीवों को खाने की इच्छा से, गोह के प्रविष्ट होने पर, डर के कारण, मेंढक दूर भागे जा रहे हैं।

वातरूढेषु विद्योतमान-मूर्त्तिषु विद्युता ।

नानावर्णाकृतिष्वभ्रेष्वदभ्रेषु ध्वनत्सु च ॥

गगनं चलचित्राणां स्यात्तिरस्करिणीसमम् ॥१००॥

वायु पर चढ़े हुए, बिजली से चमकती मूर्ति वाले, अनेक रंगों और आकृतियों वाले बहुत से मेघों के गरजते होने पर, आकाश चलचित्रों के पर्दे के समान हो जाता है।

मग्नोन्मग्नो निशानाथोऽस्थेयस्यम्भोदमण्डले ।

जले नद्याश्चले धत्ते कूर्मीयं कामनीयकम् ॥१०१॥

अस्थिर मेघसमूह में डूबता उतराता चन्द्रमा, नदी के चलते पानी में कछुए जैसी शोभा को धारण कर रहा है।

नभस्तितउनेन्द्रेण पूयमानाः पतन्त्यहो ! ।

तिलाकारास्तुषाकारा धारासाराश्च विप्रुषः ॥१०२॥

अहा ! इन्द्र द्वारा नभ-रूपी छलनी से छानी जा रही, तिलों के आकार की तुषों के आकार की तथा मूसलाधार रूप में बूंदें गिर रही हैं।

सरस्सु सूत्रिकाकारे धारासारे पतत्यलम् ।

भवन्तीव भुवो भाति वृष्टिः खं प्रति नैकधा ॥१०३॥

कई बार, रस्सियों के आकार वाले अधिक धारासार के तालाबों में गिरते होने पर, पृथ्वी से नभ की ओर हो रही सी वृष्टि मालूम होती है।

क्षण आपः क्षणे तापः खेदः स्वेदः क्षणे क्षणे ।

क्षणे प्रतीयते माघो निदाघोऽथापरे क्षणे ॥१०४॥

क्षण में पानी, क्षण में गर्मी क्षण-क्षण में खेद और पसीना, क्षण में माघ प्रतीत होता है और दूसरे क्षण में ग्रीष्म।

शोभिनी शष्पशालाद्यैः शैलमाला वलाहकैः ।

क्षणे रूपकदृश्याभा स्यात्तिरस्करिणी-स्तृता ॥१०५॥

घास-वृक्षादि तथा मेघों से शोभा पाने वाली पर्वतमाला, क्षण में पर्दे से ढकी, नाटक के दृश्य सी हो जाती है।

अपूतपूतिपानीयपातात् कण्डूपदाः पुनः ।

पङ्किलासु प्रतोलीषु प्रस्खलन्ति पिचण्डिलाः ॥१०६॥

अपवित्र गंदे पानी में पड़ने के कारण, खारिश-युक्त पैरों वाले, तुन्दिल व्यक्ति, बार-बार कीचड़ भरी गलियों में फिसल रहे हैं।

पाथसि प्रतिबिम्बानि पश्यन्तीव पयोमुचाम् ।
स्निग्धत्वात् स्तिमितैर्नेत्रैः समन्तात्सेवका वकाः ।१०७॥

मानो स्नेही (मित्र) होने से, पानी में बादलों के प्रतिबिम्बों को, चा
ओर सेवक बगुले, निश्चल नेत्रों से देख रहे हैं।

पतित्वा प्रत्नपानीये वेगी वारिदबिन्दुकः ।
सहसा कीलकाकारः उत्पतत्याकुलो यथा ॥१०८॥

वेग-युक्त पानी का बिन्दु पुराने पानी में गिर कर, मेख के आकार वाल
व्याकुल की भान्ति सहसा कूदता है।

प्लवते बिन्दुवद् बिन्दुः क्वचिद् बुद्बुदवज्जले ।
चक्ररेखां च कुर्वणो लसतीव लुठत्यपि ॥१०९॥

पानी में, कहीं बूँद, बूँद को भान्ति कूदतो है. कहीं बुलबुले की तरह
और चक्र सो रेखा खेंचती हुई नाचती सी है और लोटती भी है।

छद्मना छदिषोऽम्बूनां रेखारूपेण पातिनाम् ।
रोदितीव कुटीरोऽपि दृष्ट्वा दीनस्य दुर्दशाम् ॥११०॥

लकीरों के रूप में छत से गिरने वाले पानियों के वहाने, कुटीर भी गरी
की हालत को देखकर मानो रो रहा है।

यदभ्रफलके विद्युत्-सुधावर्त्तिकया लघु ।
लिख्यते तत्परेणाम्भोदाम्बरेण प्रमृज्यते ॥१११॥

आकाश-रूपी फट्टे पर, विजली-रूपी चूने की बत्ती (चाक) द्वारा जो कुछ
शीघ्र लिखा जाता है, वह दूसरे मेघ-रूपी कपड़े द्वारा पोंछ दिया जाता है।

पुण्ड्रकक्षेत्रपानीय-प्रवेशात् पूरिते विले ।
हन्यते मूष उन्मज्जन् हन्त ! हालिकबालकैः ॥११२॥

पानों (मोटे गन्नों) के खेत में पानी के घुस जाने से, विल के भर जाने पर,
बाहर निकलता हुआ चहा, हाय ! किसानों के बच्चों द्वारा मारा जा रहा है।

लूतातन्तुमयो लज्जा-पटो वामभ्रुवोऽभवत् ।
सुभगङ्करणोऽङ्गानां सुतरां सेकिमोऽम्बुदैः ।११३॥

सुन्दर भौहों वाली की मकड़ी के तन्तुओं के धागों से बनी साड़ी, बादलों

से अत्यन्त भीगी हुई, अंगों को अति सुन्दर बनाने वाली हो गई।

आलवालजले पाककम्राण्याम्राणि शीतले।
पतित्वा पित्तमन्तःस्थं प्रायशः शमयन्ति तत् ॥११४॥

पकने पर सुंदर बने आम के फल, ठण्डे आलवाल के पानी में गिरकर, मानो (अपने) अन्दर स्थित उस पित्त (गरमी) को शान्त कर रहे हैं।

आमूलचूलमालीन-तूलकस्थूलपूलकम् ।
क्षणेन जायते लिप्तं दधिकूर्चेन खं क्वचित् ॥११५॥

नीचे से ऊपर तक रूई के मोटे-मोटे गठ्ठों से भरा हुआ नभ, क्षण में, कहीं-कहीं पनीर से लिपा हुआ हो जाता है।

पानीयपातसंजात-हरिता हरितानि च।
मुष्णन्ति ग्रामगेहानि न किं कैदार्यवैभवम् ? ॥११६॥
निष्प्रत्यूहत्वशंसीनि तारामार्गस्य ग्रामकैः।
ध्वजान्येव धृतान्युच्चैस्तान्यब्दागतये ध्रुवम् ॥११७॥

पानी पड़ने से पैदा हुई घास से, हरे रंग वाले, गाँव के घर, क्या खेतों के समूह की शोभा को नहीं चुरा रहे हैं? ॥ निश्चय से उन गाँवों ने, आकाशमार्ग के निर्विघ्न होने की सूचना देने वाले, बादलों को आने के लिए, वे झण्डे ही ऊँचे उठाये हुए हैं।

मर्कटीरजनीगन्धा-मृदुसौरभमांसलः ।
वाति तप्तस्तुषारो वा समीरो वा प्रकम्पनः ॥११८॥

मक्की और रजनीगन्धा की धीमी-धीमी सुगन्धि से सघन हुई, गर्म या ठण्डी, मन्द या तेज़ चलने वाली, वायु बहती है।

गण्डशैलावृता खण्डाम्भोदैर् द्यौः रूढभूरुहा।
क्षुम्पाहिच्छत्रभूम्ना च भाति तारकितेव भूः ॥११९॥

बिखरे मेघों के कारण, नभ बड़ी-बड़ी शिलाओं और उगे वृक्षों से युक्त लगता है और खुंब तथा अहिछत्रों की अधिकता के कारण भूमि सितारों से युक्त प्रतीत हो रही है।

वज्रान्न-मर्कटी-मध्य-मार्गे मध्यन्दिनेऽध्वगः।
भीष्मोष्मभ्राष्ट्रभूमौ स्वं मनुते स्विन्न उच्छ्वसन् ॥१२०॥

बाजरे तथा मक्की के बीच के मार्ग में दोपहर को, पसीने से तर हाँफ पथिक, अपने आपको भयंकर गर्मी वाले भाड़ के स्थान में मानता है।

प्रवत्स्यते पयोदेन पुनरित्येव विह्वला ।
अवश्यायमिषा प्रातः धात्री धत्तेऽश्रुसन्ततिम् ॥१२१॥

मेघ फिर प्रवासी हो जायगा इस लिए ही व्याकुल पृथ्वी प्रातः ओस बहाने अश्रुपरम्परा को धारण करती है।

किङ्किरालस्य पीतानि प्रसूनानि पतन्ति यत् ।
पल्वलेऽपचितिः प्रायः सा पुरन्दरपाशिनोः ॥१२२॥

कीकर के पीले फूल जो जौहड़ में गिर रहे हैं, वह मानों इन्द्र तथा वरु की पूजा है।

सन्ततं द्रुलताग्रेभ्यश्च्यवमानाम्बुबिन्दुजैः ।
छिद्रैः स्यान्मुद्रिता क्षुद्रैः रोमकूपमयी मही ॥१२३॥

निरन्तर द्रुम-लताओं के अग्रभागों से, चू रहे जल-बिन्दुओं से पैदा हों वाले छोटे-छोटे छिद्रों से चिन्हित भूमि, रोम कूपों से भरी हो जाती है।

यद् विद्युता काञ्चनबालया कृतं, वियत्कुमारस्य दृढोपगूहनम् ।
तस्यैव चिन्ह्ं वलयाकृतीदं, माहेन्द्रकोदण्डमगादि पामरैः ॥१२४

जो विजली-रूपी सुनहरी युवति ने, आकाश रूपी युवक का गाढ आलिंग किया है, उसी का वलय के आकार का यह चिन्ह है, जो मूर्खों द्वारा इन्द्र धनुष कहा गया है।

पूपास्तथा पक्ववटा गृहस्थैः पापच्यमानाः प्रथयन्ति मोदम् ।
धूमायमानो विधुरस्य वह्निर् ज्वलत्युदश्रोर्न तु दुर्दिनेऽस्मिन् ॥१२५

गृहस्थों द्वारा अधिक पकाये जा रहे पूए तथा पकौड़े, सुगन्धि फैला रहे हैं, किन्तु पैदा हुए आँसुवों वाले रँडवे की, इस मेघाच्छन्न दिन में, धूम छोड़ती (सुलगती) हुई आग, जल नहीं रही है।

यच्चम्पकानामिह कोरकेषु लसन्ति पानीयपृषन्ति सन्ति ।
विवृण्वते लङ्घितयौवनानां मर्मस्पृशं तानि कथां समौनम् ॥१२६॥

यहां, जो चम्पकों की कलियों पर पानी की बूदें चमकती हैं, वे यौवन को पार कर जाने वाले उन (चम्पकों) की मर्मभेदिनी कथा को, मौन के साथ

बता रही हैं। (बरसात में चम्बे के फूल कम हो जाते हैं अतः यह उन चम्पकों के बुढ़ापे का समय माना जाता है)।

जातूर्ध्वमेकेऽम्बुधरा अवाचीं, द्रवन्त्युदीचीमपरे च नीचैः।
संघट्टमाना रवणा मिथोऽन्ये, तारापथे कां कलयन्ति केलिम्? ॥१२७॥

कभी-कभी कुछ मेघ ऊपर दक्षिण की ओर दौड़ते हैं तथा अन्य (मेघ) नीचे, उत्तर की ओर, और (मेघ) परस्पर टकराते हुए और गरजते हुए, आकाश में कौन सी खेल खेल रहे हैं?

आकर्ण्य मार्गे घनघोरघोषं, भीरुः कुमारी सहसोपगम्य।
उपेक्षितं चापि चिराद् युवानं, गृह्णाति वेपिष्ठवपुर्भुजाभ्याम् ॥१२८॥

मार्ग में मेघ के घोर शब्द को सुनकर, डरपोक, कुमारी, झट से पास आकर, चिरकाल से उपेक्षित भी युवक को, अति काँपते शरीर वाली अपनी भुजाओं से पकड़ लेती है यानि आलिंगन करती है।

कर्णेषु कण्डूयितकारणानि, स्वान्तेषु सञ्चारित-सम्भ्रमाणि।
कपाटवातायनकम्पनानि, तडित्वतां गर्जिततर्जितानि ॥१२९॥

बादलों के गर्जन रूपी डाँट-डपट, कानों में, खारिश पैदा करने के कारण (या खुजली और तीव्र वेदना पैदा करने वाले, (कारणा = तीव्रवेदना) हृदयों में घबराहट फैलाने वाले, और दरवाज़ों तथा झरोखों को हिला देने वाले होते हैं।

घोरेण घोषेण घनस्य सद्यः सत्रैव जाते करकानिपाते।
त्रस्ताश्च तारात्ततयो विहस्ताः स्रस्ता नभस्तो भुवने विभान्ति ॥१३०॥
विस्फूर्जिते प्रद्रुतचञ्चलायाः संश्लिष्य मेघे त्रुटितो नु हारः?
इन्द्रेण बीजानि नु वापितानि? पयोगडा वा भुवि तत्त्वतस्ते? ॥१३१॥

अचानक मेघ के घोर शब्द के साथ ही ओले गिरने पर, डरे हुए और व्याकुल तारा-समूह नभ से पृथ्वी पर गिरे हुए मालूम होते हैं।

(मेघों की) गड़गड़ाहट होने पर, भागती हुई बिजली की, बादल से उलझ कर, क्या मुक्तामाला टूट गई है? या इन्द्र ने बीज बोये हैं? या वे भूमि पर वस्तुतः ओले हैं?

इतस्ततोऽभ्येत्य हि दीपवर्तिं श्लिषाभिलाषाः शलभा भ्रमन्ति।

पश्यन्ति दग्धानपरान् न मुग्धा विस्पन्दनमानांश्च पुरः पृथिव्याम्
॥१३२॥

पतङ्गपुञ्जे परितः प्रमीते स्मेरा स्वयं सा सुखसंनिषण्णा।
धूमच्छलं दुर्वचनं वमन्ती स्नेहेन सिक्तापि न किं कठोरा ॥१३३॥

आलिंगन की इच्छा वाले पतंगे, दीपवर्ति के पास आकर इधर-उधर घूम रहे हैं, और (वे) मूर्ख जले हुए तथा आगे पृथ्वी पर तड़फ रहे, औरों (पतंगों) को नहीं देखते हैं।

चारों ओर मरे पड़े पतंग पुञ्ज पर मुस्काती हुई, स्वयं सुख से स्थित वह (दीपवर्ति) धूएं के बहाने दुर्वचनों को उगलती हुई, स्नेह (तेल, प्यार) से सनी हुई भी क्या कठोर नहीं ?

केदारकूलेषु कुलालकीट-कलापमुल्लस्य विलङ्घयन्ती।
शिञ्जानशोभा चपलाभिजाता, कृषाणबाला युववन्दनीया ॥१३४॥

खेत के किनारों पर कुम्हार कीड़ों के समूह को कूद कर लाँघती हुई, (गहनों की झंकार से शोभा पाने वाली, चंचल, किसान की बाला, युवकों द्वारा वन्दनीय हो गयी।

शनैः स्पृशन्नाम्रफले कराभ्यामुच्छ्वासमुन्मुञ्चति, दण्डीदीर्घम्।
उरस्वतीं पृच्छति चाम्रपालीं-'किं मूल्य मि'त्युन्मथितः कुमारः ॥१३५॥

धीरे-धीरे दो आम के फलों को दोनों हाथों से छूता हुआ कुँआरा, दण्ड जैसा लम्बा साँस (आह) छोड़ता है, और उथल-पुथल हृदय हुआ पूर्ण वक्षः-स्थल वाली आम्रपाली को पूछता कि (इन का) क्या मोल है।

अहिभ्रमाद् रज्जुविशङ्कितानामाम्रामृतादेः परिरक्षकाणाम्।
होकारगर्भैः पटहप्रणादैः प्रबोधिताः पार्श्वजनाः शपन्ति ॥१३६॥

साँप के भ्रम से रस्सी से डरने वाले, आमों तथा अमरूदों के रखवालों के, होकार-युक्त नगारों के शब्दों से जगाये गये, पड़ोसी लोग, गालियां दे रहे हैं।

शस्यस्य घासस्य च लाविकानां, कण्डूयितोत्तापकदर्थितानाम्।
नासाग्रगाः स्वेदलवा जनीनां, मुष्णन्ति मुक्तामणि-मञ्जिमानम् ॥१३७॥

फ़स्ल तथा घास काटने वाली, खारिश तथा गर्मी से पीडित, नारियों की, नासाओं के अग्रभाग में स्थित, पसीने की बूंदें, मुक्तामणियों की सुन्दरता

को चुरा रही हैं।

सस्यानि संत्यज्य पचेलिमानि, व्यवस्यतां चिर्भटचर्वणानि।
दिशासु तन्वन्ति च फेरवाणां, विभावरी-भैरवतां विरावाः ॥१३८॥

जल्दी पकने वाली फस्लों को छोड कर कचरों का चर्वण करने वाले गीदड़ों के शब्द, दिशाओं में रात की भयङ्करता को बढ़ा रहे हैं।

समुत्सुकाः सागरसंगमाय, समुच्छलन्त्यः सरितः समन्तात्।
तन्वन्ति तारध्वनिगीतवाद्यास् तौर्यत्रिकं तुङ्गतरङ्गभङ्गैः ॥१३९॥

समुद्र से मिलने के लिए अति उत्कण्ठित, उछलती, तार-ध्वनि-रूपी गीत तथा वाद्यों वाली नदियां, चारों ओर ऊँची लहरों के टेढ़ेपन या भेदन से तौर्यत्रिक (गीत, वाद्य, नृत्य तीनों) को प्रसारित कर रही हैं।

वज्रान्नकाण्डाः शितशूलचूला विभान्ति शुष्कासु मरुस्थलीषु।
विदारणार्थं मुदिरोदराणां भटा इवोत्तोलितभीमभल्लाः ॥१४०॥

सूखी मरुस्थलियों में, तीक्ष्ण शूल जैसी शिखाओं वाले, बाजरे के काण्ड (टांडे), बादलों के उदरों को फाड़ देने के लिए, उठाए हुए भयंकर भालों वाले सैनिकों जैसे लग रहे हैं।

वासो विसारी पथि मर्कटीनां मादं च मोदं च ददाति दूरात्।
वाष्पोष्ममिश्रो निकटे सः एव, मध्यन्दिने प्राणहरत्वमेति ॥१४१॥

रास्ते में फैलने वाली मक्कियों की गन्ध, दूर से नशा तथा आनन्द देती है, भाप तथा गर्मी से मिली हुई वही, समीप आने पर, दोपहर के समय, प्राण-हारक बन जाती है।

उद्भासितं माघवनं धनुः खे, प्रीत्येक्ष्यमाणं कृषिकाङ्गनाभिः।
किं सस्यसम्पत्तिवधू-प्रवेश-द्वारं प्रकृत्या रचितं विचित्रम्? ॥१४२॥

नभ में, चमकदार, कृषिक-स्त्रियों द्वारा प्रीतिपूर्वक देखा जा रहा, इन्द्र-धनुष, क्या प्रकृति द्वारा, सस्यसम्पत्ति-रूपी वधू के प्रवेश के लिए विचित्र द्वार बनाया गया है?

तुबरीत्रोटने लग्नलोमकण्टक-लोहितम्।
कण्डूलं करमादाय नवोढायाः कृषीवलः ॥१४३॥

कराभ्यां शनकैः घर्षन् स्वयमेव मुहुर्मुहुः ।

जातः कण्टकिताङ्गोऽसौ मनाङ्मुद्रितलोचनः ॥१४४॥

भिण्डी तोरईयां तोड़ते समय चुभे हुए लोमकण्टकों से लाल हुए, खारिश-युक्त, नवविवाहिता के हाथ को लेकर दोनों हाथों से धीरे-धीरे मसलता हुआ, कुछ मुँदे नेत्रों वाला वह किसान, वार-वार खुद ही कण्टकित अंगों वाला हो गया।

भूतानां भूतयेऽम्भोदो बहिर्वर्षतु वा न वा ।

निशान्तस्यान्तरे हन्त ! स्वान्तसन्तापसम्भवाः ॥१४५॥

सुवासिन्याः प्रवासिन्याः परं वाष्पपरम्पराः ।

वहन्त्येव वहन्त्येव वहन्त्येव दिवानिशम् ॥१४६॥

बाहर, प्राणियों के भले के लिए मेघ बरसे या न बरसे, किन्तु हाय! घर के भीतर, सौभाग्यवती प्रवासिनी के, हृदय के सन्ताप के कारण पैदा होने वाली अश्रुधाराएं, दिन रात, वह ही रही हैं।

असूतजरती जोषा झञ्झाधूततरोस्तले ।

चिन्ताक्रान्ता करोत्येवाकाशरोमन्थनं पथे ॥१४७॥

बिना बच्चे को जन्म दिये ही बूढ़ी हो गयी नारी, मार्ग में वर्षा युक्त आँधी से कम्पित वृक्ष के नीचे, चिन्ताक्रान्त हुई, आकाश में जुगाली कर रही है। यानि व्यर्थ समय गँवा रही है।

स्तनिते स्तनयित्नूनां तरुणीं कञ्चुकोत्स्तनीम् ।

वेश्मपृष्ठे रतां काञ्चिच्छदिश्छिद्रविमुद्रणे ॥१४८॥

संवीक्ष्यैको युवा वीथ्यां विलासी सहयायिनम् ।

'वयस्यं प्राह-पश्योर्ध्वं रे ! पयोधरवैभवम्' ॥१४९॥

बादलों के गरजने पर, कञ्चुक से उपर उठे स्तनों वाली, घर के ऊपर छत के छिद्रों को मूँदने में लगी हुई, किसी युवति को देख कर, गली में एक विलासी युवक, अपने साथ चलने वाले मित्र को कह रहा था—'अरे ! ऊपर पयोधरों (मेघों, स्तनों) का वैभव (लावण्य) देखो।

वेषभूषा-परिस्पन्दः लुप्तः क्षिप्तैरुपानहा ।

पङ्कैश्चित्रित-पृष्ठासौ जघनोत्सेकमन्थरा ॥१५०॥

निपातो निश्चितो हा ! चेच्चिक्लिले चपलं चलेत् ।

स्वैरं सर्पति चेद् वृष्ट्या स्यान्मृष्टाऽङ्गप्रसाधना ॥१५१॥

वेष-भूषा की तड़क भड़क लुप्त हो गई, जूते द्वारा फेंके गये कीचड़ों द्वारा चित्रित पीठ वाली, जघन (नितम्ब) के उन्नत होने के कारण सुस्त, वह स्त्री, यदि कीचड़ तेज चले तो गिर जाना निश्चित है, यदि धीरे चले, तो हाय ! वारिश द्वारा, (पाउडर आदि द्वारा की गई अङ्गों की सजावट धुल जायेगी।

ऐन्द्री कार्मुकदोलाऽहो ! लम्बमानापि साऽम्बरे ।

भूतानां भूतलस्थानां प्रेङ्खोलयति मानसम् ॥१५२॥

अहा ! वह आकाश में लटकती हुई भी, इन्द्र की धनुष-रूपी दोला (झूला, हिंडोला), भूतल पर रहने वाले लोगों के मन को आन्दोलित कर रही है।

नोदितो मुदिरो वातैर्भीषणो भाति भूयसा ।

कल्पयन्निव कल्पान्तं नेदयन्निव मेदिनीम् ॥१५३॥

कई वार वायुओं द्वारा प्रेरित भयङ्कर बादल, मानो महाप्रलय के विनाश को लाता हुआ और पृथ्वी को अपने पास लाता हुआ सा लगता है।

ते कुलायनिलाया वा शालशाखाशिखा-स्थिताः ।

धुन्वानाः पक्षतिं प्रायो बुभुक्षोन्मुद्रिताननाः ॥१५४॥

कारुण्यकलकाकल्या म्रदयन्तो जडानपि ।

मुधा मौकुलिभिर्मुग्धैः पाल्यन्ते पिकपोतकाः ॥१५५॥

वे घोंसलों में दुबके हुए, या वृक्षों की शाखाओं एवं चोटियों पर स्थित पंखों को हिलाते हुए, अधिक भूख के कारण खोले मुँह वाले, करुणाभरी मधुर काकली द्वारा जड़ों को भी कोमल बनाते हुए, कोयलों के बच्चे, मूर्ख कौवों द्वारा व्यर्थ में पाले जा रहे हैं।

कार्पासी-कुसुमानीह रागैरुच्चावचैः स्वकैः ।

वर्णान् करिष्यमाणानां वाससां वर्णयन्ति किम् ? ॥१५६॥

यहां कपास के फूल, अपने अनेक प्रकार के रंगों से, क्या (अपने) बनाये जाने वाले कपड़ों के रंगों का वर्णन कर रहे हैं ?

स धात्रीतलचित्रे च हरिते हरिता कृते ।
भाति प्रकाशनीकाशः शणपुष्पपिशङ्गिमा ॥१५७॥

घास से हरे रंग के किये गये भूतल-रूपी चित्र में, सण के पुष्पों की वह पीतिमा, प्रकाश के समान प्रतीत हो रही है।

सातपः पयसां पातः प्रतिक्षेत्रं पदे पदे ।
वैरल्यं वापि वैषम्यं विष्वग् वृष्टेर्विलोक्यते ॥१५८॥

प्रत्येक खेत में कदम-कदम पर धूप-सहित पानी गिरता है, और चारों ओर वृष्टि की विरलता अथवा विषमता दिखाई देती है।

वृता कूलङ्कषा काशैर्भाति श्वेतशिखाशतैः ।
पार्श्वयोर्दुग्धधाराभ्यां ज्योत्स्नीष्वेषा विशेषतः ॥१५९॥

सफेद सैंकड़ों सिट्टों वाले काशों से दोनों तरफ़ से घिरी यह नदी विशेषतया चाँदनी रातों में, दुग्ध की धाराओं से आवृत मालूम होती है।

स्त्रीणां हि वक्षोज-विलासभाञ्जीत्यस्पृश्यमानानि च नैष्ठिकेन ।
स्फुटानि पाके सति दाडिमानि हसन्ति तूष्णीं कृतकौतुकानि ॥१६०॥

क्योंकि (ये) स्त्रियों के स्तनों के विलास को धारण करने वाले हैं, इसलिए ब्रह्मचारी द्वारा न छुए जा रहे, पक जाने से फूटे (खिले) हुए अनार के फल, मखौल करते हुए चुप हँस रहे हैं।

प्रदाय खाद्यं मृदुचञ्चुयोगैः, काकाः स्वशावान् परिपोषयन्तः ।
पादैश्च पक्षैः परिपीडयन्ति, ते पार्श्वगान् पाणिपिनद्ध-शीर्षान् ॥१६१॥

धीरे से चोंच मिलाते हुए चोगा देकर अपने बच्चों को पोसते हुए कौवे, हाथों से ढके हुए सिरों वाले, पास से गुज़रने वालों को, पंजों और पंखों से पीडित कर रहे हैं।

यदा कदा, यो विरलोऽम्बुपातः स्थलेषु शैलेषु सशाद्वलेषु ।
इन्द्रेण मन्ये हरितिम्न एष सः राज्याभिषेकः क्रियते समन्ततः ॥१६२॥

कभी-कभी मैदानों और घास-भरे स्थलों वाले पर्वतों पर, जो विरल जलपात होता है, सो यह मानो इन्द्र द्वारा चारों ओर हरियाली का राज्याभिषेक किया जाता है।

पिशङ्गपाकोन्मुखमञ्जरीभिः, कैदारकं शोभितशालिशस्यम् ।
समन्ततः सौरभसम्प्रसारैर् न पाकशाला-प्रतिमां प्रयाति ? ॥१६३॥

पीली और पकने को तय्यार मंजरियों के कारण शोभित, शालि-धान्यों की फ़स्ल से युक्त खेतों का समूह, चारों तरफ़ सुगन्धियों के फैलावों के कारण क्या पाकशाला (रसोई घर) की तुलना को प्राप्त नहीं हो रहा ?

शेफालिकायाः कतिचित् सुमानि, स्फुटानि भाद्रान्तिमवासरेषु ।
पतन्ति भूमौ विरलानि नूनं, वर्षर्तुकालं गणयन्ति शेषम् ॥१६४॥

भाद्रपद के आखिरी दिनों में, खिले हुए हारसिंगार के कुछेक फूल, भूमि पर विरले-विरले गिरते हुए, निश्चय से, बरसात के वाकी रहे समय की गिनती कर रहे हैं।

विस्मृत्य विश्वं विलसन्ति बाला वीथीषु वेशमस्वथ वाटिकासु ।
रसालबीजैः रचितानि वर्षा-विदाय-वाद्यानि च वादयन्ति ॥१६५॥

संसार को भुला कर बालक, गलियों, घरों और वाटिकाओं में सानन्द खेलते हैं, और आम के बीजों से बनाये गये, बरसात की बिदाई के वाद्य (सीटियां) बजा रहे हैं।

तास्तन्तुकानां ततयस्तनिष्ठास् ततस्तता मार्गमहीरुहादौ ।
लूताभिराभान्ति गुणा निबद्धा गमिष्णु-वर्षातिथिरोधनाय ॥१६६॥

वहां रास्ते के वृक्षों आदि पर फैलाये गये, अति बारीक, वे तन्तुओं के समूह, मकड़ियों द्वारा, जा रहे वर्षर्तु-रूपी अतिथि को रोकने के लिए, बांधे गये रस्से लगते हैं।

श्यामं च शोणं शबलं च शुभ्रं शक्रेण यत् खे कृतमब्दचित्रम् ।
अनेकशस्तच्चपलानिलेन, प्रमृज्यते वेगवदाक्रमेण ॥१६७॥

नभ में, इन्द्र द्वारा, जो काला, लाल, चितकबरा और श्वेत. बादलों का चित्र बनाया जाता है, कई वार, वेग से आक्रमण करने वाली चंचल वायु द्वारा वह पोंछ दिया जाता है।

वर्षावसाने हरितत्वमेतद् हरित्सु यत् सर्वपथीनमास्ते ।
हरिद्ध्वजो नूनमिलातलेन सन्दर्शितोऽसौ शरदागमाय ॥१६८॥

वर्षा ऋतु के अन्त में, दिशाओं में यह जो सब ओर हरियाली है, निश्चय

से वह महीतल द्वारा, शरद् ऋतु के आने के लिए दिखाई गई हरी झण्डी है।

एषा केवलमेषा मे वामानां मानघस्मरः।
भूत्वासामेव काक्षेषु निधायाम्भोद! चञ्चलाम्। १६९॥
पुनरागतये यायाः पन्थानः सन्तु ते शिवाः।
भूयांसि नो नमांस्यन्तश्चञ्चलाप्रणवाञ्चित! ॥१७०॥
अन्यर्हि नूनमेष्यामीत्येव किं सान्त्वयन् रसाम्।
मन्द्रनादमिषा मेघो लोकाढ्यङ्करणो गतः ॥१७१॥

हे जलद! मेरी सिर्फ़ यही इच्छा है कि तू सुन्दरियों के मान को मिटाने वाला हो कर, इन्हीं के कटाक्षों में विजली को रख कर, फिर आने के लिए जा। तेरे मार्ग मङ्गलमय हों। हे विद्युत्-रूपी, ओङ्कार के कारण पूजित! या सुन्दर! हमारे बहुत-बहुत नमस्कार। 'निश्चय से मैं और समय में आऊंगा' मानो ऐसे, गम्भीर-गर्जना के व्याज से, पृथ्वी को सान्त्वना देता हुआ, संसार को समृद्ध वनाने वाला मेघ, चला गया।

इति श्रीश्यामदेव-पाराशर-विरचिते ऋतुचक्रे वर्षर्त्तु वर्णनं सम्पूर्णम्।

—❃—

* शोशुभ्यमाना शरत् *

शं शम्बरारेश्च रतेश्च रेफं, तथादिमं दं दयिताजनस्य।
आदाय सृष्टे 'शरद्' इत्युपाधौ, प्रायेण कीर्त्त्यं त्रिकमेतदेव ॥१॥

शम्बरारि (काम) के आदि (अक्षर) 'श' को, रति के 'र' को और दयिता (प्रिया) के 'द' को लेकर वनाये गये 'शरद्' इस नाम वाले (ऋतु) में ये तीन ही प्रायः वर्णन के योग्य हैं।

आमोदयन्ती कुमुदोत्पलानि, प्रगल्भयन्ती कुररीकुलानि।
वाचालयन्ती चलचञ्चरीकान्, शोशुभ्यमाना शरदभ्युपेता ॥२॥

श्वेत-रक्त कमलों को सुगन्धित तथा प्रसन्न वनाती हुई, कुररी (उत्क्रोश) पक्षियों को वाचाल एवं उद्धत वनाती हुई, चञ्चल-भ्रमरों को वाक्पटु करती हुई, अति शोभाशालिनी शरद्-ऋतु आ गई।

निरन्तरः कोमल-शाद्वलानां, दिगन्तरे श्यामलिमाऽभिरामः।
प्रख्यापयन् प्रावृषप्रौढिमानं, शीतस्य साचिव्यमिवातनोति ॥३॥

दिशाओं के मध्य में लगातार, कोमल घास के मैदानों का रमणीय साँवलापन, पावस की प्रौढ़ता को प्रकटता करता हुआ, मानों शीत को सहायता कर रहा है।

इतस्ततः शुक्तिपुटा लुठन्तः कुल्यादिकूले सलिलस्थले च।
विभान्ति दन्ताः शरदर्भकेण, प्रदर्शिताः प्रावृषपीडनाय ॥४॥

नदी आदि के किनारे और पानी के स्थान में, इधर उधर लुढ़कते हुए सीपों के खोल, शरद्-रूपी बच्चे द्वारा, पावस को चिड़ाने के लिए दिखाये गये दाँत से लग रहे हैं।

शोषं प्रयातेषु निषद्वरेषु, याश्छेदरेखा विवृताननाभाः।
ब्रुवन्ति ताः प्रावृष-जीवनस्य, प्रायः प्रणाशं शरदागतिं च ॥५॥

शुष्कता को प्राप्त हुए कीचड़ों में, खोले हुए मुंहों जैसी, जो दरारों की रेखाएँ हैं, वे मानों पावस के जीवन के विनाश और शरद् के आगमन को कह रही हैं।

उच्चावचाः शङ्खनखादयस्ते, विष्वग् विकीर्णाः कुनदीतटेषु।
सद्यः शरत्कालहतस्य भान्ति, नूनं चितास्थीनि तपात्ययस्य ॥६॥

छोटी नदियों (चो) के किनारों पर इधर उधर विखरे, नाना-प्रकार के वे छोटे शंख घोंघे आदि, अभी २ शरत्काल-रूपी काल द्वारा मारे गये पावस की, निश्चय से चिता की अस्थियों से प्रतीत होते हैं।

राकाधिनाथे सहसोज्जिहाने, करैः सुधाक्तैश्च दिशो दिहाने।
पुनर्निमग्ना सचराचरा धरा, प्रतीयते क्षीरमहार्णवोदरे ॥७॥

राकापति (पूर्ण चन्द्र) के झट से उदित होने, और अमृत से सनी अपनी किरणों द्वारा दिशाओं को लीपता होने पर, स्थावर-जङ्गमों सहित पृथ्वी, फिर क्षीरसागर के बीच में डूबी हुई सी मालूम होती है।

गोधूमबीजाकरणे प्रवृत्ता, व्यावृत्य वक्त्रं युवहालिकेन।
दृष्टाऽनुवारं कृतकैतवेन, नवा वधूटी तनुतेऽवगुण्ठनम् ॥८॥

गेहूं के बीजों को विखेरने में लगी हुई, वहाना करने वाले, युवक हल-

वाहक द्वारा, मुंह मोड़ कर वार २ देखी गई नई बहू, घूंघट फैला रही है।

हली हलत्येव निरुद्यमोऽद्य, बली तु शम्बाकुरुते परं परः।
क्षेत्रं प्रियं तत् प्रथमस्य भाति, क्षेत्रं परस्योद्यमिनः परन्त्विदम् ॥९॥

मेहनत न करने वाला (आलसी) किसान, अभी (पहली वार) हल ही चला रहा है, किन्तु दूसरा बली (किसान) दूसरी वार जुताई कर रहा है। पहले (किसान) को तो वह क्षेत्र यानि पत्नी प्रिय लगती है, पर दूसरे मेहनती को यह क्षेत्र यानि खेत (प्रिय है)।

वामेक्षणाः केलिकलाविदग्धा, विवृद्धमानाश्च विरज्यमानाः।
जाड्येन्द्रजालैरनुकूलयन्ती, दूतीव दक्षा शरदागतैषा ॥१०॥

केलिकला में कुशल, बढ़े हुए मान वाली, रूठती हुई, सुनयनाओं को, सर्दीरूपी जादुओं द्वारा अनुकूल वनाती (मनाती) हुई, कुट्टनी जैसी चतुर, यह शरद् आ गई है।

प्रातस्तुषाराम्बुकणाकुलैरिदं, सदर्भदूर्वादिक-शाद्वलैर्ध्रुवम्।
प्राप्ते शरत्कालधवे धरावधूः, सस्वेदरोमाञ्चयुतेव भासते ॥११॥

प्रातः ओस के पानी के कणों से भरे हुए, कुशा दूर्वा आदि युक्त घास के मैदानों के द्वारा, निश्चय से, शरत्काल-रूपी पति के आने पर, पृथ्वी रूपी बहू, स्वेद-सहित रोमांच से युक्त सी मालूम पड़ती है।

उत्सार्यमाणः शरदार्धचन्द्रैरसौ क्षणप्राघुणिकोऽपि घर्मः।
स्वेदार्द्र-कूर्पास-कृषाणकान्ताश्छायोत्सुका मध्यदिने करोति ॥१२॥

शरद् द्वारा धक्के देकर निकाला जा रहा, क्षण का पाहुना भी वह घर्म (गर्मी), दोपहर के समय, पसीने से तर चोलियों वाली, किसानों की पत्नियों को, छाया के प्रति उत्सुक बना देता है।

समुच्छलत्सौरभसौभगानां, कालोऽयमाढ्यङ्करणः सुमानाम्।
निरूप्य नूनं यमनुष्णशीतं, स्वसा वसन्तस्य शरद् विभाति ॥१३॥

छलकती हुई सुगन्धि रूपी सम्पदा वाले, फूलों को समृद्ध करने का यह समय है, न गरम न ठण्डे जिस (समय) को देख कर, निश्चय से शरद् वसन्त की बहन लगती है।

प्रशास्ति तापो दिवसे वसुन्धरां, विजृम्भमाणा निशि शीतता तथा।

आः ! प्राणिनः पेषणपट्टकल्पं, द्वैराज्यमेवं सततं दुनोति ॥१४॥

दिन में गर्मी पृथ्वी पर शासन करती है और रात को बढ़ती हुई शीतलता, हाय ! इस प्रकार चक्की के पाटों जैसा, दो का शासन, निरन्तर जीवों को दुखी कर रहा है।

स केलिकृन्मालतिकालताभिर् आमोदमादी मधुमत्समीरः।
स्वैरं विसर्पन् स्वयमेव विष्वक्, स्मरस्य सन्देशहरत्वमेति ॥१५॥

मालती की लताओं के साथ केलि करने वाली, सुगन्धि से मत्त कर देने वाली, मकरन्द भरी मन्द वायु, धीरे-धीरे बहती हुई, खुद ही, चारों तरफ काम की संदेशवाहक बन जाती है।

धत्ते शनैः शीतलता क्रमेण, यथा प्रदोषावधि तुन्दिमानम्।
गूढास्तथान्तर्नवदम्पतीनां, गाढाभिलाषा गुणिता भवन्ति ॥१६॥

धीरे-धीरे क्रमशः रात के आरम्भ होने तक, जैसे-जैसे ठण्डक वृद्धि को धारण करती है, उसी तरह नये दम्पतियों के हृदयों में छुपी हुई प्रबल इच्छाएं, गुणित होती (बढ़ती) जाती हैं।

शनैः शनैः शीतलता शरीरे, तनोत्यलं स्वादिमकौतुकानि।
प्रचोदयन्ती मिथुनानि यूनां, परस्परर्ण-प्रतिपादनाय ॥१७॥

युवकों के जोड़ों को आपस के उधार चुकाने के लिए प्रेरित करती (उकसाती) हुई शीतलता, धीरे-धीरे शरीर में आस्वाद तथा उल्लासों को अत्यधिक फैला रही है।

विवर्धमानोऽनुदिनं च शीतिमा, चिरेण भानूष्णिमतापितायाः।
वसुन्धराया विदधाति विग्रहे, सुखासिका-संजननाय सेकम् ॥१८॥

प्रतिदिन बढ़ती हुई शीतलता चिरकाल से सूर्य की गर्मी से तपाई गई पृथ्वी के शरीर में, सुख पैदा करने के लिए, टकोर (स्वेदन) कर रही है।

याः प्रावृषेण्यैः पयसां प्रवाहैः, कृताः समन्तात् क्षतयः क्षितायाम्।
धात्रीव रात्री प्रयुनक्ति तत्र, शशिप्रभारोपण-सान्द्रलेपम् ॥१९॥

बरसाती पानियों के बहावों ने, पृथ्वी पर चारों ओर जो कटाव (घाव) किये हैं, उन पर नर्स जैसी रात, चाँदनी रूपी ज़खम भरने की गाढ़ी मल्हम

का प्रयोग करती है। (क्योंकि चाँदनी में पृथ्वी के कटाव वाले स्थान भरे हुए लगते हैं)

यथैव शैत्यं प्रथिमानमश्नुते, क्रमेण पुंसां निशि तूलिका अपि।
तथैव पादान्तचिताः शनैः शनैः, कण्ठान्तिकं यान्ति विकृष्यमाणाः ॥२०॥

जिस प्रकार ठण्ढक विस्तार को प्राप्त हो रही है, उसी तरह क्रमशः रात को पायँतो में इकठ्ठा की हुई रज़ाईयां, धीरे-धीरे खेंची जा रहीं कण्ठ के पास पहुंच जाती हैं।

वीक्ष्यावनौ पुञ्जिततूलपूलान्, खेऽभ्रानदभ्रानथ भूरिशुभ्रान्।
नीचैस्तु दभ्रा पिचुपण्यशाला, विभाति चोर्ध्वं नितरां विशाला ॥२१॥

पृथ्वी पर इकठ्ठी की गई रूई के ढेरों को, तथा नभ में अधिक श्वेत बहुत से मेघों को देखकर, नीचे तो छोटी रूई की मण्डी, और ऊपर नितान्त बड़ी (रूई की मण्डी) मालूम पड़ती है।

सुरेन्द्र-वैद्येन वलाहकाहेर्, नीलं विषं स्यान्नियतं निरस्तम्।
शरत्पयोदा अत एव भूम्ना, दिगन्तरे बिभ्रति शुभ्रिमाणम् ॥२२॥

देवेन्द्र-रूपी वैद्य ने, मेघ-रूपी साँप का निश्चय से काला विष निकाल दिया होगा, इसीलिए शरद्-ऋतु के बादल, प्रायः, आकाश में शुक्लता को धारण करते हैं।

रथ्यासु पथ्यासु च कुक्कुरीणां, गन्धो विसारी च रवो विचित्रः।
शुनां मिथो बुक्कयतां कृतेऽहो !, सर्व्वीयमामन्त्रणपत्रमासीत् ॥२३॥

गलियों और रास्तों में, कुत्तियों का, फैलने वाला गन्ध और विचित्र शब्द, आपस में भौंकने वाले कुत्तों के लिए, सर्वसाधारण निमन्त्रण-पत्र था।

राज्ञीमनेकेऽनुचरा इवैते, मध्यान्तरे जातु रणप्रसक्ताः।
श्वानः शुनीं लालसिनोऽनुयान्ति, विद्राविता लागुडिकैः कुमारैः ॥२४॥

जैसे रानी के पीछे अनेक नौकर चलते हैं, ऐसे ही कभी-कभी बीच में युद्ध करने वाले, दण्डधारी लड़कों द्वारा भगाये गये ये लालसायुक्त कुत्ते, कुत्ती के पीछे चल रहे हैं।

उन्मुद्रितास्यासु च शुक्तिकासु, सौभाग्यतः स्वातिकणाः पतित्वा।
महार्हमुक्तामणितां भजन्तः, शरत्प्रभुत्वं महयन्ति लोके ॥२५॥

खोले मुखों वाली सीपों में, सौभाग्यवश स्वाति के कण (बिन्दु) गिर कर, अमूल्य मुक्तामणि के रूप को प्राप्त होते हुए, शरद्-ऋतु की प्रभुता को लोक में बढ़ाते हैं।

खुरैः खनित्वा वृषभा वसुन्धरां, विदार्य वप्राणि च वारणा ध्रुवम्।
शरन्निदेशात् समतां स्थलानि, नयन्ति प्रावृड्विषमीकृतानि ॥२६॥

बैल खुरों से पृथ्वी को खोद कर, तथा हाथी ऊंचे टीलों किनारों आदि को उपाड़ कर, निश्चय से शरद् के हुक्म से, बरसात द्वारा ऊँचे नीचे किये गये स्थलों को समतल कर रहे हैं।

गुल्मेषु मुक्ता गिरिगोचरेषु, नैते विषाणा हरिणैः पुराणाः।
परं शरच्छासक-शीतिमास्त्र-पराहतैर् हेतय आहितास्तैः ॥२७॥

पर्वत की चरागाहों में स्थित-झाड़ियों में हरिणों द्वारा छोड़े गये, ये पुराने सींग नहीं, अपि तु शरद्-रूपी राजा के शीतलता-रूपी अस्त्र-द्वारा पटकाये गये उन्होंने शस्त्र रख दिये हैं।

नैर्मल्यनीले नभसि स्फुरन्त्यस्, तमीषु तारातातयो लसन्ति।
सभाजनायेव शरद्रमाया मुक्ताः प्रसूनप्रकरा दिशाभिः ॥२८।

निर्मलता के कारण नीले नभ में, रातों में चमकती हुईं ये तारा-श्रेणियां, शरद्-रूपी लक्ष्मी के मानो स्वागत करने के लिए, दिशाओं द्वारा फेंके गये फूलों के समूहों सी शोभा दे रही हैं।

अहो! शरच्चन्द्रिकयाम्बरान्तं, लिप्तानि जातानि हसन्ति नूनम्।
मृष्टानि पिष्टातपटीरनीरैर्, दिग्धानि दुग्धैश्च दिशां मुखानि ॥२९॥

अहा! शरद् की चाँदनी द्वारा आकाश तक लिपे हुए, पाउडर तथा चन्दन के पानियों से सुन्दर बनाये गये, और दूधों से पोते गये से दिशाओं के मुख, निश्चय से हँस रहे हैं।

काशस्य तूलं यवसे विशीर्णं, श्लिष्टं च झुण्टेषु च कण्टकेषु।
स्वयं वहच्छीतिमकातरत्वं, मन्येऽभितो मार्गति रक्षितारम् ॥३०॥

घास में बिखरी और झाड़ियों एवं काँटों में उलझी हुई काश की रूई, मानो स्वयं शीतिमा के भय को धारण करती हुई, चारों ओर रक्षक को ढूँढ रही है।

केदारबन्धे चपलं चलन्ती, व्याजेन पादस्खलनस्य बाला।
निपत्य मन्दं स्वजते विविक्ते, किशोरकं पाकिमशालिपालम् ॥३१॥

खेत की मेढ पर चपलता से चलती हुई बाला, पैर के फिसलने के बहाने धीरे से गिर कर, एकान्त में, पके हुए शालियों (सेला धानों) की रक्षा करने वाले छोकरे को आलिंगन करती है।

ग्राम्या कुमारी शणबीजकोषान्, बद्ध्वाऽङ्घ्रिमूले भुवमस्पृशन्ती।
मत्वात्र मञ्जीरकमञ्जिमानं, मुष्णात्यहो ! इन्द्रवधूविलासान् ॥३२॥

सण की फलियों को पादमूल में बाँध कर, पृथ्वी को न छूती हुई गाँव की कुमारी, इन में पाँजेबों की सुन्दरता को समझ कर, अहा ! इन्द्राणी के आनन्द को चुरा रही है।

किञ्चिन्नता: पिञ्जरमञ्जरीभिर्, दोलायमाना: कलमा मरुद्भि:।
आचम्य वासं परिणामजं स्वं, शिरांसि धुन्वन्ति मुदेति मन्ये ॥३३॥

पीली मञ्जरियों से कुछ झुके हुए, वायुओं से डुलाये गये कलम (चावल की किस्म), पकने के कारण पैदा होने वाली, अपनी सुगन्धि का पान कर मानों आनन्द से सिरों को हिला रहे हैं।

सूनोल्लसच्चम्पकवल्लरीणां, समुच्छलन् सौरभसम्प्रवाह:।
सौम्यानपि व्याकुलयन् विधत्ते, वैवश्यदोलायितचित्तवृत्तीन् ॥३४॥

फूलों के कारण उल्लास-युक्त चम्पक की वेलों का, छलकता हुआ सौरभ का प्रवाह, शान्त व्यक्तियों को भी व्याकुल करता हुआ, विवशता के कारण आन्दोलित मनोवृत्तियों वाले कर देता है।

पुञ्जीकृतव्रीहि-समुत्थवास-प्रसारसौभाग्य-समाप्लुतेषु ।
कोष्ठेषु काचित् कृषिकस्य कान्ता, विहारिणी भाति वपुष्मती
श्री: ॥३५॥

इकठ्ठे किये गये धानों से उठने वाली सुगन्धि के फैलाव-रूपी वैभव से भरे हुए, कमरों में घूमती हुई, कोई किसान की पत्नी, शरीरधारिणी लक्ष्मी प्रतीत होती है।

शालासु शालित्वचनप्रसङ्गे, वामभ्रुवां झङ्कृतकङ्कणानाम्।
जयन्ति साक्षीणि हि मुद्गराणि, विसारिसङ्कोचिभुजान्तराणाम् ॥३६॥

घरों में शालि-धान्यों के छिलका उतारने (पं० छड़ने) के समय, झङ्कार-युक्त कङ्कणों वाली सुन्दर भौहों वाली, फैलते तथा सङ्कुचित हो रहे भुजाओं के अन्दर के भागों (स्तनों) वाली, नारियों के साक्षी-रूप, मूसलों की जय हो।

तुषारसिक्तानि दिशां मुखानि, परागपूगैः परितः प्रलिम्पन् ।
वासो बदर्याः विपिने विसारी, दीनाध्वनीनान् मदयन् दुनोति ॥३७॥

ओस से सींचे गये दिशाओं के मुखों को, चारों ओर पराग-पुञ्जों से लीपती हुई, वन में फैलती हुई बेरी की सुगन्धि, वेचारे पथिकों को नशा चढ़ाकर दुखी करती है।

कूलोल्लसच्छ्यामलशाद्वलानां, शेवालजालेन हरित्तलानाम् ।
पल्ली-पुरी-पद्धति-पल्वलानां, निलीयते शीतलता जलेऽह्नि ॥३८॥

तट पर लहलहाते सांवले घास के स्थानों वाले, काई के जाले से हरे तलों से युक्त, गांवों और शहरों के रास्तों के जौहड़ों के पानी में, दिन के समय शीतलता छुप जाती है।

शरद्वयस्येन विनोदिनैत्य, स्पृष्टो नु कक्षे कुसुमच्छलेन ।
हसन् बलान्मानसमाच्छिनत्ति, स केसरस्तत्र च सप्तपर्णः ॥३९॥

विनोदी शरद्-रूपी मित्र द्वारा आ कर क्या कक्ष में छुआ गया, फूलों के बहाने हँसता हुआ, वह केसर का वृक्ष और वहां सप्तपर्ण का वृक्ष, जबरदस्ती मन को खैंच रहा है ?

शेफालिकायाः कुसुमानि शोण-वृन्तानि कीर्णानि वनीषु सद्यः ।
पञ्चेषुणा कामिहृदन्तरात् किं, शल्यानि निष्कृष्य निपातितानि ॥४०॥

लाल वृन्तों वाले, फुलवाड़ियों में ताजा विखरे हुए, हारसिंगार के फूल क्या कामदेव ने कामियों के हृदयों के बीच में से निकाल कर वाण गिराये हैं ?

बन्धूकजात्यादिकसूनसङ्घैरितस्ततः केलिकलः समीरः ।
अन्धीकृतस्तत्र परागपूगैः प्रवाति वा तन्मधुनोन्मदिष्णुः ॥४१॥

बन्धक (गुलदुपहरिया), चमेली आदि के फूलों के समूहों के साथ, इधर उधर मन बहलाने वाला समीर, वहां परागपुञ्जों से अन्धा किया गया, या उन के मधु (मकरन्द, मद्य) से उन्मत्त हुआ बह रहा है।

अगस्त्यपुष्पप्रकरोऽभिरामो भूयोऽप्यहो ! दृष्टिपथं प्रयातः ।

अलभ्यकान्तादिमसंगमाद्य-मन्दस्मितस्योत्सवमातनोति ॥४२॥

सुन्दर, बार-बार दृष्टिपथ में आया हुआ भी, अगस्त्य-वृक्ष के फूलों समूह, अहा ! (दोबारह) न मिलने वाले, प्रिया के प्रथम मिलन की, मुस्कान के आनन्द को फैला रहा (देता) है।

भ्रान्ता मतिः प्रावृषबाष्पदाहैः, स्थेमानमायाति न मारुतस्य।
दिवानिशं साम्प्रतमप्यहो ! यन्न निश्चिताद् वाति स दिक्प्रदेशात् ॥४३॥

अहो ! पावस की भाप के दाहों द्वारा भ्रान्त हुई वायु की बुद्धि, स्थिरता को प्राप्त नहीं हो रही, जोकि, अब भी दिन रात, वह निश्चित दिशा-प्रदेश से नहीं बहती।

शेफालिका-सौरभसम्प्रवाहे, मरुत्तरङ्गैः परितः प्रसारिते।
विशेषतो रात्रिषु नासिकन्धयाः,पान्था अतृप्ताः स्थगयन्ति यात्राम् ॥४४॥

हारसिंगार की सुगन्धि के प्रवाह के, वायु की लहरों द्वारा, चारों ओर फैलाये जाने पर, विशेषतया रातों में नासिकाओं से पान करने वाले, न तृप्त हुए पथिक, (अपनी) यात्रा को स्थगित कर देते हैं।

प्रसादि च स्वादिमलोभनीयं, कौपं च वाप्यं सलिलं चकास्ति।
वीक्ष्यैव यत् स्युः पुलकोद्गमानि, वपूंष्यहो ! वेपथुविप्लुतानि ॥४५॥

स्वच्छ और स्वादुता के कारण लुभावना, कूप तथा वापी का पानी शोभा दे रहा है, जिस (पानी) को देखते ही, अहो ! खड़े हुए रोंगटों वाले शरीर, कँपकँपी से व्याकुल हो उठते हैं।

सम्पश्यतां चञ्चलखञ्जनानां, व्याप्तं युगैर् हा ! पथि खं जनानाम्।
भार्यादृशौ च स्मरतां प्रवासे, बाष्पा द्रुमादीनपि रोदयन्ति ॥४६॥

मार्ग में, चंचल खञ्जनों के युगलों से भरे हुए आकाश को देखने वाले, और प्रवास में (अपनी) पत्नियों के नेत्रों को स्मरण करने वाले लोगों के आंसू, वृक्षों आदि को भी रूला देते हैं।

क्रौञ्चा निबद्धावलयश्च हंसा निवृत्य खे हन्त ! कुतोऽपि देशात्।
आदौ शरन्नाटकभूमिकाया गायन्ति नान्दीमिव काकलीभिः ॥४७॥

अहा ! नभ में पंक्तियां बाँधे हुए कूँजें और हंस, किसी देश से लौट कर, शरद् ऋतु-रूपी नाटक की भूमिका के आदि में, (अपने) मधुर स्वरों द्वारा

मानो नान्दी का गान कर रहे हैं।

कासारकूले वरला निषण्णा, छायां निजामेव निरीक्ष्य नीरे।
मत्वा सपत्नीं सुतरां विमुग्धा, मुहुर्मुधाक्रामति हन्त! चञ्च्वा ॥४८॥

तालाब के किनारे बैठी हुई हंसी, पानी में अपनी ही छाया को देख कर, अत्यन्त भोली (उसे) सौत मान कर, हाय! वार-२ व्यर्थ हो चोंच से आक्रमण कर रही है।

स तस्थिवान् रोधसि राजहंसः, पक्षालिकक्षे पिहितात्मतुण्डः।
आभाति वैभातिकशीतभीतः, प्रत्यक्ष आत्मेव सरोवरस्य ॥४९॥

किनारे पर बैठ रहा, पंखों की पंक्ति वाले कक्ष में छुपाई चोंच वाला, वह राजहंस, प्रभातकालीन सर्दी से डरी हुई, प्रत्यक्ष, सरोवर की आत्मा सा लगता है।

निरन्तरा सारसचक्रपाली, तीरे सरस्या निभृतं निषण्णा।
लोकोत्तरं किञ्चन कीर्तनीयं, मुष्णाति मौग्ध्यं मणिमेखलायाः ॥५०॥

लगातार तलईया के तट पर चुप बैठी, सारसों की चक्करदार पंक्ति, अलौकिक तथा वखान करने योग्य, मणियों की तगड़ी के किसी सौंदर्य को चुरा रही है।

वाप्याः प्रतीरं परितश्चरन्ती, समाहिताली वकसेवकानाम्।
हेमन्तचौरेण हरिष्यमाणान्, पातीव नीलोत्पलपद्मकोशान् ॥५१॥

वापी के तट के चारों ओर घूमती हुई, सावधान वगुले रूपी सेवकों की पंक्ति, हेमन्तरूपी चोर द्वारा हरे जाने वाले, मानो नीले कमलों और पद्मों के कोशों (दूसरा अर्थ है – नीलम, उप्पल और पद्मराग मणियों के खज़ानों) की रक्षा कर रही है।

उन्मग्नकायाः सलिले त्रुडित्वा, प्रोत्पत्य कल्हारदलेषु लीनाः।
भूयस्तरन्तो हृदये ह्रदस्य, कारण्डवाः केलिकृतो द्रवन्ति ॥५२॥

पानी में डुबकी लगा कर शरीर को वाहर निकालने वाले, उड़कर कमलों के पत्तों में छुपे, फिर तालाब की छाती पर तैरते हुए, खेल करने वाले कारण्डव (मुर्गाबियां) दौड़े फिर रहे हैं।

एहीत्युदित्वोत्पततां तटात्तटं, कोकद्वयानां करुणं विराविणाम्।

परस्परं संगमलालसानामनुत्सवा यान्ति निशा नदीषु ॥५३॥

'आओ' ऐसा कहकर एक तट से दूसरे तट की ओर उड़ने वाले, करुण-क्रन्दन करने वाले, परस्पर मिलाप के लिए उत्कण्ठित, चकवों के युगलों की रातें, नदियों पर, बिना ही खुशी के बीत जाती हैं।

ग्रामार्भका अम्लिमसंभृतानि, फलानि जीर्णत्रपुकर्कटीनाम्।
लिप्ताननाः शीत्कृतिनो रदन्ति, जिघत्सवः खर्परमप्यतृप्ताः ॥५४॥

लिपे हुए मुखों वाले, सी-सी करते हुए, न तृप्त होने से, खप्पर (ऊपर का छिलका) भी खा जाना चाहते हुए, गाँव के बच्चे, खटाई से पूर्ण, पुरानी (पूरी पकी हुई) खीरा ककड़ियों के फलों को खुरच रहे हैं।

लेखास्थितान्यामलकीफलानि, शाखासु शीतेन च पाटलानि।
नूनं वितीर्णा वनवाटिकाभिर्, माणिक्यमालाः शरदिन्दिरायै ॥५५॥

शाखाओं पर पंक्तियों में स्थित, और सर्दी के कारण कुछ लाल (गुलाबी) आंमले के फल, निश्चय से, वन तथा वाटिकाओं द्वारा, शरद्लक्ष्मी को दी गई माणिक की मालाएं हैं।

शारप्रभा-पीतिमरञ्जितानां, लम्बोदरीणां स्फुटकर्कटीनाम्।
प्रसार्यमाणं परितः समीरैः, सौरभ्यमामन्त्रयतीव पान्थान्। ५६॥

चितकबरी प्रभा तथा पीतिमा से रँगी, लम्बे उदर वाली, फूट नामक ककड़ियों की, चारों ओर वायु द्वारा फैलाई जाने वाली सुगन्धि, पथिकों को निमंत्रित सी कर रही है।

क्रोडीकृता शीतकरातपेन, लिप्तेव गाढं वसुधा सुधाभिः।
शरत्प्रदत्तं निशि शीतहेतोर्, नीशारमेषा विशदं बिभर्ति ॥५७॥

चाँद की ज्योत्स्ना द्वारा गोद में ली गयी, सघन चूने से पुती सी यह पृथ्वी, रात में शीत के कारण शरद् द्वारा दी गई, मानो सफेद रज़ाई को धारण कर रही है।

स्वच्छे सरस्याः सलिले सितानि, स्फुरन्ति पद्मानि कृतस्मितानि।
समुल्लसन्त्यम्बरदर्पणे च, ज्योत्स्नीषु तद्बिम्बनिभानि भानि ॥५८॥

तलईया के स्वच्छ जल में, श्वेत मुस्कराते हुए कमल, शोभित हो रहे हैं, और आकाश रूपी शीशे में उनके अक्सों (प्रतिबिम्बों) जैसे, सितारे चाँदनी

रातों में चमकते हैं :

शीतेन नीतान् तनुपीतिमानं, द्रेकाफलानां विपुलान् गुलुंच्छान् ।
द्राक्षेति जल्पन्ति पुरीकुमार्यो दीर्घोच्छ्वसद्-ग्रामयुवेक्ष्यमाणाः ॥५९॥

सर्दी से कुछ पीले किये गये, द्रेका (पं डेक) के फलों के बड़े-२ गुच्छों को, लम्बी आहें भरने वाले गाँव के युवकों द्वारा देखी जा रहीं, शहर की कुमारियां 'अंगूर' कहती हैं।

प्रायः प्रदेशं परितः शराणां, शिखाशतैः किं शुचिशोधनीभिः ।
नीतं नभो निर्मलतां नितान्तं, प्राक् प्रोक्षितं प्रावृषिकैः पयोभिः ? ॥६०॥

पहले पावस के पानियों द्वारा छिड़काव किया गया, प्रायः प्रदेश क चारों ओर क्या सरकण्डों की सैंकड़ों शिखा-(सिट्टा-) रूपी झाड़ुओं द्वारा आकाश नितान्त निर्मलता को प्राप्त कर दिया गया है ?

दोदुल्यमाना मरुता शराणां, शुक्लाः शिखाश्चामरचारुवर्णाः ।
चिराच्छरच्छासकमभ्युपेतं, प्रायः प्रसादादुपवीजयन्ति ॥६१॥

वायु द्वारा वार-वार हिलाये जा रहे. श्वेत, चामरों के समान सुन्दर रंग वाले, सरकण्डों के सिट्टे, देर के बाद आये. शरद्-रूपी राजा को, मानो खुशी से हवा कर रहे हैं।

तनूं वितत्योभयतस्त्रियामा, प्रसह्य संवर्धयति स्वराज्यम् ।
तद्वीक्ष्य चान्तर्नवदम्पतीनां, स्वमङ्गमायच्छति मन्मथोऽपि ॥६२॥

दोनों तरफ़ से अपने शरीर को तान कर, रात्रि बलपूर्वक अपना राज्य बढ़ा रही है। उसे देख कर नव-दम्पतियों के हृदयों में. कामदेव भी अपने अंग को अकड़ा रहा है यानि अंगड़ाई ले रहा है।

तारुण्यमानोद्धत ! वेपमान ! कुण्डाग्निना शाम्यति नैव कम्पः ।
तामेव तावच्छरणं प्रयाहि रे !, उष्मापि यस्याः श्रितवान् भुजान्तरम्
॥६३॥

अरे यौवन के मद से उद्धत ! काँपने वाले ! कुण्ड की आग से कम्प नहीं हटता, उसी (नायिका) की शरण में जाओ (स्वयं) गर्मी भी जिस के वक्षःस्थल का आश्रय लिये हुए है।

गाढेषु वाढं परिरम्भणेषु, परस्परं कम्पितदम्पतीनाम् ।

शीतं शरीरैः परिपीडितं वा, निश्चोतितं वा व्यपयाति दूरम् ॥६४॥

काँपते हुए दम्पतियों के परस्पर, अत्यधिक गाढ़ आलिंगनों में, शरीरों द्वारा पीडित की (दवाई) गयी या निचोड़ी गयी सर्दी, दूर हो जाती है।

स्निग्धोपलेपैः पटवासयोगैर्, जाता विनालक्तकचर्चयाऽपि ।
शीतेन संवर्धितशोणिमास्या, शरीरिणी सुन्दरता वधूटी ॥६५॥

शीत द्वारा बढ़ाई गई लालिमा-युक्त मुख वाली बहू, चिकने (क्रीम आदि के) लेपों, पाउडर के प्रयोगों तथा अलक्तक के लगाने के बिना (ही) शरीर-धारिणी सुन्दरता बन गई है।

इष्टातपाधिष्ठितचन्द्रशालाः, बाला नवासेचनकस्वरूपाः ।
उद्ग्रीविका-दानमहोत्सवेन, युवाध्वगाक्षीणि कृतार्थयन्ति ॥६६॥

इच्छित धूप (सेकने) के लिए चन्द्रशाला में बैठी हुई; नये अति सुन्दर स्वरूप वाली युवतियां, गर्दन उठाने (झाँकने) रूपी महान् उत्सव द्वारा, युवक पथिकों की आँखों को कृतकृत्य कर रही हैं।

पादाग्र उत्तोलितकान्तकाया एकान्तकक्षे स्खलितोत्तरीयाः ।
सायं रमण्यो दयितोपकण्ठे, सजृम्भमङ्गानि विसारयन्ति ॥६७॥

पैरों के अग्रभाग पर तोल लिये सुन्दर शरीर वालीं, एकान्त कमरे में खिसक गये उत्तरीयों से युक्त रमणियां, सायंकाल के समय, पति के पास होने पर, जंभाईयों के साथ अंगों को फैला रही हैं अर्थात् अँगड़ाईयां ले रही हैं।

किं शीतहेतोररुणौ कपोलौ, रोमोदयाद् दन्तुरितौ वहन्ती ।
सा साचि-सञ्चारितचारुनेत्रा, नाख्याति किञ्चिद् दयितं नवोढा ॥६८॥

रोंगटे खड़े होने के कारण दन्तुरित (विषम), क्या शीत के कारण लाल हुए कपोलों को धारण करती हुई, टेढ़ फैलाये सुन्दर नेत्रों वाली, वह नवोढा पति को कुछ नहीं कह रही है।

आगन्तु-हेमन्तचमूचरेण, सज्जा समाराधयितुं समीकम् ।
विविक्तवासे विदधाति बाला, व्रीडावती कञ्चुकचारुचोलम् ॥६९॥

आगामी हेमन्तरूपी योधा के साथ, युद्ध करने के लिए तय्यार, शर्मीली युवति, एकान्त कमरे में, कवच जैसी सुंदर अँगिया बना रही है।

दीपाग्निखेलोल्लसितं धरायां, 'दीपावली'-पर्व नभस्तलेऽपि।
काशिष्णु-नक्षत्रगणैः परीते, सोल्कानिपाते विमले विभाति ॥७०॥

दीपक तथा आतिशबाज़ी से भूमि पर चमकदार दीवाली का उत्सव, चमकते तारासमूहों से घिरे और उल्काओं के निपात से युक्त, निर्मल नभस्तल में भी, शोभा दे रहा है।

शेफालिका या सुमसङ्घसूत-सौरभ्यसौभाग्यसुसंस्कृतासीत्।
संभाव्य सैवाद्य शरत्प्रियान्तमाभाति दूना विधवेव दीना ॥७१॥

जो हारसिंगार, फूलों के समूहों से पैदा होने वाली सुगन्धि की सम्पदा से भली भान्ति सजी हुई थी, वही अब शरद्रूपी प्रिय के अन्त की सम्भावना करके सन्तप्त, बेचारी विधवा सी लग रही है।

लाला-प्लुतास्या वनवासिबालाः, शटीभवन्निर्मलदन्तजालाः।
रदार्धपिष्टानि, गिरन्त्यतृप्ता आरण्यकर्कन्धुफलानि भूयः ॥७२॥

लारों से भरे मुँहों वाले, खट्टे हो रहे हैं निर्मल दन्तसमूह जिनके ऐसे, न तृप्त हुए, वनवासियों के बालक, दाँतों से आधे कुचले गये, जंगली बेरों को, बार २ या अधिक निगल रहे हैं।

क्रमेण गात्राणि शरत्प्रभावात्, स्वाभाविकस्नैग्ध्यविवर्जितानि।
जाड्येन जाड्यं शनकैः प्रभाते, नीतानि यद्वाप्यभिचारितानि ॥७३॥

क्रमशः शरदृतु के प्रभाव से, स्वाभाविक चिकनाई से रहित हुए अंग, प्रातः धीरे २ जाड़े द्वारा जड़ बना दिये गये हैं अथवा अभिचारित किये गये हैं, यानि इन पर जादू कर दिया गया है।

प्राक् तापशक्तेः प्रचुरप्रयोगात् क्षयित्वमाप्तो दिवसः क्रमेण।
स्नेहेन चन्द्रातपशीततायाः क्षपाप्युपेता लघु मेदुरत्वम् ॥७४॥

पहले गर्मी-रूपी शक्ति के अधिक प्रयोग के कारण, दिन क्रमशः ह्रास वाला या तपदिक वाला हो गया। चाँदनी एवं शीतलता के प्यार के कारण, या तैलादि चिकनाहट के कारण, रात भी, शीघ्र ही, दीर्घता या मोटेपन (मेदा-रोग) को प्राप्त हो गयी है।

धूमावलिः साऽद्य दिगन्तराले, जडीकृता शीतिमगौरवेण।
विभाति रेखेव शरन्महीप-साम्राज्यसीमाप्रतिदर्शनाय ॥७५॥

दिशाओं के बीच (नभ) में, आजकल, शीतलता की अधिकता द्वारा बढ़ बनाई गई धूएं की पंक्ति, शरद्-रूपी राजा के साम्राज्य की सीमा को जाहिर करने के लिए, लकीर जैसी मालूम पड़ती ।

या भीरव इति ख्यातास्ता एव शीतिमाशिषा ।
सञ्जाताः शीतभीतानां रक्षिण्यो मदिरेक्षणाः ॥७६॥

जो 'डरपोक' इस नाम से प्रसिद्ध थीं, वे ही जादू भरे नेत्रों वाली, शीतलता के आशीर्वाद से, सर्दी से डरे हुओं की रक्षा करने वाली हो गईं।

विपण्यां वर्धते विष्वङ्, मार्द्वीकमदिराऽऽदरः ।
दारा दोरन्तरे यस्य, कालेऽस्मिस्तस्य को दरः ॥७७॥

बाज़ार में चारों तरफ़, अंगूरी शराब का आदर बढ़ रहा है, जिस की भुजाओं के बीच में दारा है (भला) इस काल में, उसे कौन सा डर है।

इति श्रीश्यामदेव-पाराशर-प्रणीते ऋतुचक्रे शरद्वर्णनं सम्पन्नम् ।

—❀—

* हन्त ! हन्ता हेमन्तः *

एतर्हि हेमन्त ! कथं नु गेया लोकोत्तरेयं तव जातुविद्या ।
यद् वातवैश्वानरयोर् विवेको नाभाति मार्त्तण्डमृगाङ्कयोश्च ॥१॥

हे हेमन्त ! तेरी इस अलौकिक जादू-विद्या का कैसे गान करें, क्योंकि इस समय, न तो वायु और आग में फ़र्क मालूम पड़ता है और न ही सूर्य और चाँद में।

जडं तडागस्य जलं तथाच्छं, मुष्णाति शोभां मुकुरस्य प्रातः ।
धूम्यास्तृतस्तिष्ठति सन्ततं यत्, स्यादस्य कोऽसौ हृदयस्य दाहः ॥२॥

प्रातः जमा हुआ और निर्मल, तालाब का पानी, दर्पण की शोभा को चुराता है, किन्तु जो निरन्तर सघन धूम से ढका रहता है, इसको कौन सा हृदय का दाह होगा ?

सरस्सु नायं खलु धूमभूमा, हिमेन किंतर्हि विलोपितानाम् ।
पङ्केरुहाणां विरहेऽम्बुलीनैर्, मीनैर्विमुक्तास्ततशोकवाताः ॥३॥

निश्चय से सरोवरों में यह धूम की अधिकता नहीं, किन्तु बर्फ़ द्वारा नष्ट किये गये कमलों के विरह में, पानी में दुबके हुए, मत्स्यों द्वारा छोड़ी गई, फैली हुई शोक की आहें हैं।

हेमन्तकालो हिमिका-करालः, श्यालः शिशूनां मशकान्तकालः।
यात्राविरोधी नभसङ्गमानां, बन्धुर्द्रढीयान् प्रियसङ्गमानाम् ॥४॥

हिम के कारण भयङ्कर हेमन्त-काल, बच्चों का साला, मच्छरों का अन्त-काल, खगों की यात्रा का विरोधी और प्रेमियों से मिले हुओं का दृढ़ मित्र है।

विष्वग् विशेषेण च वेगिवाते, वाति प्रभातेऽवयवा विसंज्ञाः।
विविक्षयात्मन्यखिलेन नूनं, शनैः शनैः किञ्चन संकुचन्ति ॥५॥

विशेषतया प्रातः, वेग-युक्त वायु के चारों ओर बहते होने पर, संज्ञारहित हुए अंग, निश्चय से पूर्णतया अपने में ही प्रविष्ट हो जाने की इच्छा से, धीरे-२ कुछ सिकुड़ते जाते हैं।

हेमन्त-सामन्त ! समन्ततस्ते, राज्यं महाश्चर्यंकरं विभाते।
नीलाङ्गुलोष्ठाः शिशवोऽपि शीताद्, नीता निबद्धाञ्जलितां
त्वया यत् ॥६॥

हे हेमन्त-रूपी सामन्त ! प्रातः चारों ओर तेरा राज्य अति आश्चर्यजनक है, जो कि तूने शोत से नीलो हुई अंगुलियों एवं ओठों वाले बच्चों को भी, बँधी हुई अञ्जलियों वाले बना दिया।

शून्यानि गात्राणि कुतोऽपि जातो घातस्तनीयानपि च प्रभाते।
अरुन्तुदत्वं तनुते तनौ हा !, जाड्यार्त्तिभीवेपथुतर्जितानाम् ॥७॥

अङ्ग सुन्न (चेष्टारहित) हो गये हैं, और प्रातः हल्की सी लगी हुई भी चोट, जाड़े की पीड़ा भय एवं कँपकँपी द्वारा तर्जित (डाँटे) व्यक्तियों के शरीर में, हा ! मर्मभेदी दुःख फैलाती है।

बाह्येऽनले शीतलता प्रतीयते, देदीप्यते किन्तु स जाठरोऽग्निः।
जाड्येन चित्रं त्विदमास्थितं यत्, सत्तैव देहस्य न चानुभूयते ॥८॥

बाहर की आग में ठण्ढक प्रतीत होती है, किन्तु पेट की आग, अत्यधिक दीप्त हो रही है। जाड़े ने आश्चर्य तो यह किया, कि देह की सत्ता का ही अनुभव नहीं होता है।

गभस्तयः सम्प्रति भानवीयाः, कारुण्यपात्रत्वमितास्तुषारात् ।
सरोज-सौभाग्यविलोप-शोकाद्, नताननश्च त्वरतेंऽशुमाली ॥९॥

अब सर्दी (बर्फ़) के कारण, सूर्य की किरणें करुणा-पात्रता को प्राप्त हो गई हैं और कमलों की सम्पत्ति नष्ट हो जाने के शोक के कारण झुके मुख वाला सूर्य, तेज़ी से चल रहा है।

सूरो धरात्यन्तजडेति दूरात्, कर्त्तव्यमात्रं परिपालयिष्यन् ।
भियाशुगो जाङ्घतां तनोतीत्यतो ह्रसीयांसि दिनानि मन्ये ॥१०॥

पृथ्वी अत्यन्त ठण्ढी है इसलिए कर्त्तव्यमात्र पालन करना चाहता हुआ सूर्य, डर के कारण जल्दी चलता हुआ, लम्बे २ डग भरता है, इसी लिए मानो दिन छोटे हैं।

शीतिम्नि शीर्णो ननु दीर्घरात्रं, दिवाकरो दीनदशां प्रयातः ।
न काटवं तापनपाटवं तच् 'चण्डांशु'-रित्यस्त्युपनाम तस्य ॥११॥

निश्चय से लम्बे समय तक सर्दी में पड़ा हुआ सूर्य, दीनदशा को प्राप्त हो गया है। न वह तीक्ष्णता है न तपाने की पटुता 'चण्डांशु' तो उसका उपनाम है।

शीतेन नीतो नितरां स भीतिम्, उदीयमानो द्युमणिर्विलम्बात् ।
अवाङ्मुखो दूरत एव तूर्णं, तिरोदधन् तीरयति स्वयात्राम् ॥१२॥

शीत द्वारा नितान्त डराया गया, देर से उदित होने वाला वह सूर्य, अधोमुख दूर से ही जल्दी-जल्दी छुपता हुआ, अपनी यात्रा को समाप्त कर लेता है।

तिक्तैर्मरीचैः करकुद्मलानि श्लिष्टानि दष्टान्यपि वा विभाते ।
किं कार्म्मणं किञ्चन कौतुकं वा, यदस्ति शीतेऽपि नखम्पचत्वम् ॥१३॥

प्रातः हाथ की अंगुलियां तीक्ष्ण मिर्चों द्वारा, आलिंगित अथवा काटी गयी (हो जाती हैं)। क्या जादू है अथवा कोई अचम्भा है, जो कि सर्दी में भी नखों को अति जलाने की शक्ति है।

तुषारपाते सति च प्रभाते, श्यामं च शूनं श्रमशक्तिशून्यम् ।
विचेतनं साङ्गुलि पाणिपादं, तोतुद्यते कोमलसूचिकाभिः ॥१४॥

और प्रातः बर्फ़ पड़ जाने पर, नीले, सूजे हुए, मेहनत करने की शक्ति से

रहित, चेतनाहीन, अंगुलियों सहित, हाथ पांव, कोमल सूईयों से अति पीड़ित होते हैं।

शैलास्तुषारावृत-विग्रहत्वाच्छुभ्रा इति स्थूलधियो वदन्ति ।
जाड्यात्तु तैः सम्प्रति तूलराशौ, गोपायिता वस्तुत आत्मसम्पत् ॥१५॥

बर्फ़ से शरीर के ढका होने के कारण पर्वत सफेद हैं, यह स्थूलबुद्धि कहते हैं, वस्तुतः सर्दी के कारण अब उन्होंने रुई के ढेर में अपनी आत्मा-रूपी सम्पत्ति को छुपा रखा है।

नैसर्गिकी मञ्जुलता लतादेः, कथावशेषत्वमितेति शैलः ।
शोकेन शङ्के शुचि शृङ्गशीर्षे, बिभर्ति पट्टं मिहिकामिषेण ॥१६॥

बेलों आदि की प्राकृतिक शोभा की कथामात्र बाकी रह गई है यानि मर चुकी है, अतः मानो शोक के कारण पर्वत, चोटी-रूपी सिर पर, बर्फ के बहाने, सफेद पगड़ी धारण कर रहा है।

दोधूयमानो रचनाः कचानां, धम्मिल्लमालाश्च वराङ्गनानाम् ।
प्रेयान् तुषाराद्रिशिलास्थलीनां, समीरणो वाति जडीकृताशः ॥१७॥

सुन्दरियों के केशों की रचनाओं तथा जूड़ों की मालाओं को बार-बार हिलाती हुई, बर्फानी पर्वतों की शिलास्थलियों की प्रिय, दिशाओं को जड़ कर देने वाली, समीर बह रही है।

भूम्नास्तृता धूमिकयाऽद्य भूमिर्, दीना विलीनाश्च दिशो दशापि ।
व्रीडावता वन्यविभाविलोपाद्, आत्माऽत्र गुप्तः किमु हैमनेन ? ॥१८॥

आजकल पृथ्वी, अधिकतया कुहरे से आच्छादित है, बेचारी दसों दिशाएं विलीन हो गईं हैं। क्या वन की शोभा के नष्ट हो जाने से लज्जा-युक्त हेमन्त ने, अपने आप को इसमें छुपा लिया है ?

प्रतानिनी-पादप-पत्र-पुष्प-प्राण-प्रतिष्ठा प्रकृतिः प्रमीता ।
तुषारपाते परितः पृथिव्यां, प्रतीयते प्रेतपटे पिनद्धा ॥१९॥

बेलबूटों के पत्तों तथा पुष्पों में प्रतिष्ठित प्राणों वाली, मरी हुई प्रकृति, पृथ्वी पर चारों ओर बर्फ़ पड़ जाने पर, कफ़न से ढकी हुई प्रतीत होती है।

द्रष्टुं न शक्तैः प्रकृतिप्रणाशं, निमज्ज्य नीरे नलिनैस्तु नूनम् ।
प्रागेव मत्या विहितात्महत्या, सह्या महद्भिर्न परस्य पीड़ा ॥२०॥

प्रकृति के विनाश को देखने में अशक्त कमलों ने, पानी में डूब कर, निश्चय से, जानते हुए, पहले ही आत्महत्या कर ली है। महात्माओं द्वारा परपीडा सह्य नहीं होती।

शून्यास्वहो! शाखिशिखासु शोण-वर्णानि पर्णानि च पीतलानि।
अद्यश्वपातीनि विभान्ति शीत-तापेन पापेन दहन्ति शश्वत् ॥२१॥

अहो! सूनो, वृक्षों की चोटियों पर, लाल रंग के और पीले, आज कल गिर जाने वाले पत्ते, पापी शीत के सन्ताप से, निरन्तर जलते हुए से लगते हैं।

जातोऽत्र गुल्मद्रुम-वल्लरीणां, लावण्यलक्ष्म्याः किमु देहदाहः।
ततैस्तुषारैः परितः प्रभाते, भूत्येव यद् भूर् भरिता विभाति ॥२२॥

क्या यहां झाड़ियों, वृक्षों एवं बेलों की सौन्दर्य-लक्ष्मी के शरीर का दाह हुआ है? क्योंकि प्रातः चारों ओर फैली हुई बर्फ़ों के कारण, पृथ्वी भस्म से भरी हुई सी लगती है।

पुन्नाग-लोध्र-प्रसवा अरण्ये, प्रियङ्गुपुष्पाणि च पञ्चषाणि।
द्वित्रा विनिद्रा लवलीषु कोषा हसन्ति हेमन्तमदोद्धतत्वम् ॥२३॥

वन में पुन्नाग तथा लोध्र के फूल, पाँच छ प्रियङ्गु के पुष्प, और दो तीन खिली हुई लवली-लताओं की डोडियां, हेमन्त की मदोत्कटता का उपहास कर रहे हैं।

शीतेऽप्यतान्ते मुचुकुन्दकाण्डे, यतस्ततश्चाङ्कुरिता नवीनाः।
सौन्दर्यसाराः कलिकाः कियत्यः, रक्षन्ति सौभाग्यमिव प्रकृत्याः ॥२४॥

सर्दी होने पर भी न मुरझाये मुचुकुन्द के काण्ड (तने) पर, इधर-उधर निकली हुई ताज़ा, सौंदर्य-सम्पन्न कुछ कलियाँ, मानो प्रकृति के सुहाग की रक्षा कर रही हैं।

हिण्डीर-हासो न तरङ्गभङ्गैः, सनादगीतश्च विलासलासः।
कूलङ्कषाणां कृशिमाऽतिवेलं, वर्षावियोगव्यथनं व्यनक्ति ॥२५॥

न लहरों के गिरने से झाग-रूपी हास्य है, और न नाद-रूपी गाने के साथ विलास-नृत्य है। नदियों की अत्यधिक कृशता, (उनके) पावस के वियोग की व्यथा को ज़ाहिर कर रही हैं।

आः! निष्कुटेष्वट्टतटेषु यद्वा, क्वचित्क्वचिन्मृन्मयभाजनेषु।

उच्चावचैर्या विकचैः प्रसूनैः, स्वयं कृतेयं शतपत्रशोभा ॥२६॥
सा मञ्जुतासारमजानतस्ते, निरूप्य हेमन्त ! विनाशबुद्धिम् ।
रौद्रोऽट्टहासः प्रलयस्य चिह्नं, कृतः प्रकृत्या कृतकः कृतान्त ! ॥२७॥

हाय ! फुलबाड़ियों, अटारियों के किनारों, या कहीं-कहीं मिट्टी के बर्तनों (गमलों, घट-खर्परों) में, जो नाना-प्रकार (अनेक रंगों) के खिले फूलों द्वारा, सतवर्गों की सजावट स्वयं की गई है, हे हेमन्त ! हे अन्तक ! वह सुन्दरता के सार को न जानने वाले तुझ की विनाश-बुद्धि को देखकर, प्रकृति ने, विध्वंस (प्रलय) का चिह्नरूप, बनावटी रौद्र अट्टहास किया है।

ग्रीष्मे च ये प्रावृषि भीष्मदर्पाः, सरीसृपा वा सरघादिवर्गाः ।
हेमन्तमन्त्रैरिव कीलितास्ते, नीता विनीता इव मन्दिमानम् ॥२८॥

ग्रीष्म तथा बरसात में भयावह दर्प-युक्त जो रेंगने वाले सर्पादि अथवा भिड़ों आदि के समूह थे, वे मानो हेमन्त के मन्त्रों द्वारा कीले गये, विनीतों की भान्ति सुस्त बना दिये गये हैं।

कुलं कुलायेषु कपोतकानां, नीत्वा तनूं वामनतां नितान्तम् ।
प्रफुल्लपक्षावलि मौनमुद्रां, धत्ते गतं नापि चिरेण निद्राम् ॥२९॥

घोंसलों में, शरीर को नितान्त सिकुड़ा हुआ (छोटा) करके, फूले हुए पंखों के समूह वाला, कबूतरों का झुण्ड, देर से न सोया हुआ भी, मौनमुद्रा को धारण किये हुए है।

स्फूर्तिर्मृता फूत्कृतयो विलीना मूर्त्तिर्जडिम्ना दलितेव दीना ।
सर्पेऽधुना भुग्नफणेऽस्तदर्पे, रज्जुभ्रमः कस्य जनस्य न स्यात् ? ॥३०॥

फुर्ती मर गई, फुंकार लुप्त हो गये, जड़ता के कारण देह बेचारी दलित सी हो गई। झुके फण वाले एवं लुप्त अकड़ वाले, साँप में, अब किस आदमी को रस्सी का भ्रम नहीं हो जायगा ?

कस्तूरिकानाभिभृतश्चिराय कृत्वा कुरङ्गाः कटकेषु केलिम् ।
स्वैरं निषण्णास्तुहिनस्थलीषु मिथः शरीराणि मुदा लिहन्ति ॥३१॥

कस्तूरी वाली नाभियों को धारण करने वाले मृग, चिरकाल तक पर्वत-मध्यभागों में खेल कर, स्वतंत्रता से हिम-स्थलियों पर बैठे, खुशी से एक दूसरे के शरीरों को चाट रहे हैं।

विनोदवाटीषु वनावटेषु, वाटेषु वासेषु च वीथिकासु ।
शिखावलानां बहुला विकीर्णा बर्हा विवृण्वन्ति मदावसादम् ॥३२॥

विनोद करने की बगीचियों, वन के गढ़ों, रास्तों, घरों और गलियों में बिखरे हुए बहुत से (मोरों के) पंख, मयूर के मद के नाश को जाहिर करते हैं।

निरन्तरेषूपवनेषु विष्वक्, स्तब्धेषु कुञ्जेषु च काननानाम् ।
मधुव्रतानामथ कोकिलानां, कण्ठेषु विश्राम्यति मूकिमापि ॥३३॥

सघन बाग़ों में, चारों ओर वनों के निश्चल कुञ्जों में, भौरों और कोयलों के कण्ठों में मूकता भी विश्राम कर रही है।

सद्यः प्रसूता दरमुद्रिताक्षी, व्याघ्री परावर्तितकन्धराऽद्रेः ।
मुहुर् दरीद्वारविलोदरेऽसौ, स्तनन्धयान् लेढि शिशून् क्रमेण ॥३४॥

ताज़ा सूई, कुछ बन्द किये नेत्रों वाली, घुमाई (मोड़ी) गई गर्दन वाली, वह बाघिन, पर्वत की गुफा के द्वार पर गढ़े के बीच में, बार २, दूध पीने वाले बच्चों को क्रमशः चाट रही है।

कूर्मा नदीनां च दशां न दीनां, द्रष्टुं समर्थाः सततं दिनार्धे ।
पञ्चाङ्ग-संस्पृष्टशिलातलेषु, कूलेषु सूर्याभिमुखास्तपन्ति ॥३५॥

और नदियों की दीन दशा को देखने में न समर्थ, कछुए, निरन्तर दोपहर के समय, पाँचों अङ्गों (चारों पैर तथा गर्दन) से छुए गये शिलातलों वाले किनारों पर, सूर्य की ओर मुँह कर के, तपस्या कर रहे हैं (धूप सेक रहे हैं)।

निशास्त्रियामा अपि पञ्चयामा यथार्थतो यद्यपि चाद्य जाताः ।
तथाप्ययामा इव मन्वते तास्, तल्पेष्वतृप्तास्तरुणास्तरुण्यः ॥३६॥

तीन पहरों वाली (त्रियामा) भी रातें, यद्यपि अब वास्तविक-रूप में पाँच पहरों वाली हो गई हैं, तो भी बिस्तरों पर अतृप्त, युवक तथा युवतियां, उन (रातों) को पहरों से रहित ही समझ रहे हैं।

आत्मानमाश्लिष्य तथात्मनैव, तल्पेषु शैत्याद् विधुरा लुठन्तः ।
हाकारधाराभिरहो ! निशासु, पुष्यन्ति नीशार-कवोष्णिमानम् ॥३७॥

बिस्तरों पर, अपने आपको अपने आप से ही आलिंगन कर, सर्दी से

तड़पते हुए रँडवे व्यक्ति, अहो ! रातों में, निरन्तर हाहाकारों द्वारा, रज़ाई की कदुष्णता को बढ़ाते हैं।

न विद्यमानं मम नासिकाग्रं, पृथक्कृता मेऽपि च कर्णपालिः ।
इत्थं मिथो माणवका भणन्तो भातेऽग्निकुण्डाभिमुखा द्रवन्ति ॥३८॥

मेरी नाक का अग्रभाग विद्यमान नहीं, और मेरी भी कान की लौ जुदा कर दी गयी है, इस प्रकार आपस में बतियाते हुए लड़के, प्रातः, अग्निकुण्डों की ओर भागे जा रहे हैं।

क्षीणाश्च दीना अहहाऽर्धनग्ना मग्नाश्च शीताऽनिलघोरसिन्धौ ।
गात्राणि गात्रेषु निवेशयन्तो, वमन्ति धूमं मुखनासिकाभ्याम् ॥३९॥

हाय ! दुबले, अधनंगे और शीत वायु-रूपी घोर समुद्र में डूबे हुए, गरीब, अपने अंगों को अंगों में घुसेड़ते हुए, मुँह और नासिकाओं से धुआं उगल रहे हैं।

नासास्पृशज्जानुतटाः प्रसह्य, जाड्येन चैते वलयीकृताङ्गाः ।
परस्परं संनिहिताः शयाना अलब्धनिद्रा मिमते त्रियामाः ॥४०॥

नाकों से घुटनों के किनारों को छूने वाले, और बलपूर्वक सर्दी द्वारा मोड़ दिये गये शरीरों वाले, आपस में समीप होकर सो रहे ये (गरीब), नींद को न प्राप्त होते हुए, रातें मापते रहते हैं।

कथं नु निद्रोपनमेत्तथैषां, सौख्यस्य येषां विधिरेव चौरः ।
चिन्ताचिताः कुक्कुटकूजितं ते, निशामुखेऽपि प्रतिपालयन्ति ॥४१॥

भला इन को नींद आये कैसे, जिन के सुख को भाग्य ही चुराने वाला है। चिंता से व्याकुल वे तो, रात के प्रारम्भ में ही, कुक्कुट की बाँग की प्रतीक्षा करते रहते हैं।

मुष्ट्यङ्गुलीः शूत्कृति-वक्त्रवातैः सन्तप्य कक्षेषु निवेश्य पाणीन् ।
[इ]त् स्वस्तिकाकारभुजाऽधनानां, मुद्राऽत्र हेमन्त ! नितान्तशान्ता ॥४२॥
[त]त्रानुरागात् परिरम्भणं ते, भावान्तरं व्यञ्जयतीह यद्वा ।
जीर्णांशुका मृत्युभयात्तु दीनास्, तिष्ठन्ति बद्ध्वेव दृढं स्वजीवम् ॥४३॥

हे हेमन्त ! इस समय मुष्टि की अंगुलियों को, शूत्कार वाली मुख की वायुओं द्वारा गर्म कर, कक्षों में हाथों को प्रविष्ट कर, स्वस्तिकाकार बाहों

वाली, जो निर्धनों की, अति शान्त मुद्रा है, वह (मुद्रा) प्यार के कारण तेरा आलिंगन नहीं, अथवा (वह) इस समय, किसी अन्य भाव को भी व्यक्त नहीं करती, किन्तु फटे कपड़ों वाले दीन, मौत के भय से, अपने जीव (जान) को मानो कस कर बाँधे बैठे हैं।

वातोर्मिभिः शीतशिलानिशातैः, स्पृष्टानि चक्षूंषि किरन्ति तोयम्।
नूनं निदाघस्य प्रगे स्मरन्तः, कार्याय सास्राः श्रमिका द्रवन्ति ॥४४॥

ठण्ढी शिलाओं द्वारा तीक्ष्ण की गई, वायु की लहरों से छुए गये नेत्र, पानी बरसा रहे हैं। निश्चय से प्रातः समय, ग्रीष्म को स्मरण करते हुए, आँसुओं से युक्त श्रमिक, काम करने के लिए दौड़े जा रहे हैं।

सुखेन बाले ! लवणिम्नि लीने !, चराऽभितो भीतिरितो न ते स्यात्।
प्रस्पर्धमानानि तवाननेन, नामावशेषाणि कुशेशयानि ॥४५॥

हे सौन्दर्य में डूबी हुई युवति ! सुख से इधर उधर घूम, इस ओर से तुम्हें भय नहीं होना चाहिए। तेरे मुख के साथ स्पर्धा करने वाले कमलों के तो नाम ही बाकी रह गये हैं।

आः ! वादयन्तो लघु दन्तवीणां, प्रवेपमानाः स्थविराः प्रभाते।
ध्रुवं जिघत्सन्ति भुवि भ्रमन्तं, हेमन्तमारामरमाकृतान्तम् ॥४६॥

हाय ! सुबह के समय, शीघ्र दाँतों की वीणा को बजाते हुए काँपने वाले बूढ़े, निश्चय से पृथ्वी पर घूमते हुए, और बागों की लक्ष्मी का विनाश करने वाले, हेमन्त को खा जाना चाहते हैं।

विपच्यमानेक्षुरसस्य गन्धैरापूर्य दूरं परितः प्रदेशान्।
कर्कन्धुबन्धुत्वमवाप्य नागरङ्गान् परिष्वज्य मरुत्प्रयाति ॥४७॥

पकाये जा रहे गन्नों के रस की गन्धों से, दूर तक चारों ओर प्रदेशों को भर कर, बेरों की मित्रता को प्राप्त कर और संगतरों का आलिङ्गन कर, वायु बह रही है।

मुदं दधानानि दधीनि चाद्य, हैयङ्गवीनं च घनं नवीनम्।
शाकान्यथो सर्षपकन्दलीनां, नाकं धरायामवतारयन्ति ॥४८॥

आनन्द देने वाले दही, सघन ताज़ा मक्खन, और सरसों की कन्दलों के साग, आजकल पृथ्वी पर स्वर्ग को उतार रहे हैं।

इतः सखे! पश्य शिशुर्जनन्या, स्नानार्थमुत्तारित-वालवासाः।
शीतोदकस्पर्शदरात् स्वदेहं, स्थूलाश्रुभिः सिञ्चति पूर्वमेव ॥४९॥

मित्र! इधर देखो, माता द्वारा नहलाने के लिए उतारे गये वालों के (ऊनी) कपड़ों वाला बच्चा, ठण्ढे जल के छूने के भय से, अपने देह को मोटे आँसुओं से, पहले ही भिगो रहा है।

गुरोर्भयादेव परत्र शिष्यः प्रसह्य प्रातः सवनार्थमेत्य।
वीक्ष्याभितश्चाशु विधाय काक-स्नानं स मिथ्या जपतीव मन्त्रान् ॥५०॥

दूसरी तरफ, गुरु के भय से ही शिष्य, ज़बरदस्ती प्रातः स्नान के लिए आ कर, इधर उधर देख कर, और शीघ्र काकस्नान (मुँह धो) कर, झूठ मूठ मंत्रों को जप सा रहा है।

समन्ततः शीतिमराजभूयं, पदात्पदं तद् द्रढिमानमेति।
अकिञ्चनानां च जरातुराणां, परं तितिक्षा श्लथिमानमन्तः ॥५१॥

चारों ओर संर्दी का वह राज्य, आगे से आगे दृढ़ता को प्राप्त हो रहा है। परन्तु निर्धनों तथा बूढ़ों की सहन-शक्ति, अन्तःकरण में शिथिलता को (प्राप्त हो रही है)

पटच्चरैर्हा! परिवेष्ट्य बालं दीना वधूः पाति मुखोष्णवातैः।
यथा यथाऽऽयाति निशोपकण्ठं कण्ठं तथायान्त्यसवस्तदीयाः ॥५२॥

हाय! गरीब वधू, चिथड़ों से बच्चे को लिपेट कर, मुँह को गर्म वायुओं द्वारा (उसकी) रक्षा कर रही है। ज्यों-२ रात पास आ रही है त्यों २ उस के प्राण कण्ठ में आ रहे हैं।

पार्श्वे कटे पुत्रकयोस्तथाऽस्याः शयानयोश्छिद्रित-कम्बलार्धम्।
शीतार्त्तयोः स्वं प्रति हा! ऽनुवारम्, आकर्षतोरेव निशा प्रयाति ॥५३॥

हा! पास में ही इस (वधू) के, चटाई पर सो रहे, शीत-पीड़ित बेटों की, फटे आधे कम्बल को, अपनी ओर वार-वार खैंचते-खैंचते ही, रात गुज़र जाती है।

विपादिका-विस्फुटितैः कठोरैः पादैः स्रवल्लोहित-तीव्रवाधैः।
महीमहो! पार्ष्णिभिरस्पृशन्तो ग्राम्याः ससीत्कारमुखा भ्रमन्ति ॥५४॥

बिवाईयों से फटे, कठोर, बहते रुधिर तथा तीव्र पीड़ा वाले पादों से

युक्त, अहो ! पृथ्वी को एड़ियों से न छूते हुए, सी-सी करते मुख वाले ग्रामीण, घूम रहे हैं।

निक्षिप्य कक्षेऽर्धकमिक्षुदण्डं, चूषन्त आमूलशिखं परार्धम् ।
केदारमार्गे कृषिकाश्चलन्तः, सुधान्धसां जन्म विडम्बयन्ति ॥५५॥

खेत के रास्ते में चलते हुए, आधे ईख (गन्ने) को कक्ष में रखकर, दूसरे आध को जड से चोटी तक चूसते हुए किसान, अमृत-सेवन करने वालों यानि देवताओं के जन्म को तिरस्कृत कर रहे हैं।

विभूषितान् बीजपुटावलीभिर्, लावण्यलिप्तांश्च चणक्षुपाग्रान् ।
पचेलिमान् फाल्गुन एव बाला लालायितास्या अवलोकयन्ति ॥५६॥

फलियों की पंक्तियों से भूषित, निमक से लिपे, और फाल्गुन में ही पकने वाले, चनों के पौदों के अग्रभागों को, लारों से भरे मुखों वाले बालक, देख रहे हैं।

कलाय-केदार-तटेऽप्रमत्ताः, कृषीवलानामबलाश्च बालाः ।
उद्बाहवः कोकिलकाकलीभिः, काकांश्च कीरानपहस्तयन्ति ॥५७॥

मटरों के खेतों के किनारे सावधान, किसानों की स्त्रियाँ, तथा बालक, उठाई बाहों वाले, कोयलों जैसी मधुर आवाज़ों से, कौवों और तोतों को हटा रहे हैं।

विनाशिता मारशराः शितास्ते, कामिष्वमोघास्तुहिनावपातैः ।
बालैव यातास्यजितारविन्दा, सेन्दीवराक्षी स्मरमार्गणत्वम् ॥५८॥

हिमपातों ने, वे तीक्ष्ण, कामियों पर खाली न जाने वाले, काम के वाण नष्ट कर दिये। मुख द्वारा कमल को जीतने वाली, वह नील कमल सी आँखों वाली युवति (पं० मुटियार) ही काम के वाणों के रूप को प्राप्त हो गई है।

सौन्दर्यसाम्राज्य-कृताभिषेकाऽप्यनीश्वरी दण्डयितुं बलिष्ठम् ।
हिमागमं हन्त ! कुचौ वराकौ, बध्नाति बाला दृढकञ्चुकेन ॥५९॥

सौन्दर्य-संसार में किये गये राज्याभिषेक वाली भी, अति बलवान् हेमन्त को दण्ड देने में असमर्थ बाला, हाय ! वेचारे स्तनों को दृढ़ अँगिया से बाँध रही है।

अलन्तमं हैमनमभ्युपैति यथा यथाऽऽशास्वतितुन्दिमानम् ।

दोरन्तरे दन्तुरिते तथा तथा, संलीयतेऽस्याः शनकैः कवोष्णिमा ॥६०॥

ज्यों-२ अति शक्तिशाली हेमन्त, दिशाओं में स्थूल होता (बढ़ता) जा रहा है, त्यों-२ इस (बाला) के ऊबड़ खाबड़ (विषम) वक्षःस्थल में, धीरे-२ गर्मी छुपती जा रही है।

श्यामाऽभ्युपेते दयिते विदेशाद्, आस्तीर्य शय्याद्वितयं दिनान्ते।
तपस्विनी दुर्दमशीतभीता, नीशारमेकं निदधाति मध्ये ॥६१॥

प्राणनाथ के विदेश से लौट आने पर, दुर्दान्त शीत से डरी हुई, बेचारी अप्रसूता युवति, साँझ के समय, शय्याओं का जोड़ा बिछा कर, बीच में एक रज़ाई रख देती है।

हेमन्त! शास्त्रेषु सुदुर्लभस्ते, लोकोत्तरः कश्चन ब्रह्मवादः।
उत्कण्ठितानां नवदम्पतीनां, यदेकतां, यान्ति निशि द्वयानि ॥६२॥

हे हेमन्त! शास्त्रों में न मिलने वाला, तेरा कोई अनूठा ही ब्रह्मवाद है, जोकि; उत्कण्ठित नववदम्पतियों के जोड़े, रात में एकत्व को प्राप्त हो जाते हैं।

ये विद्युदुष्णेषु गृहेषु तूल-स्थूलेषु तल्पेषु सुखं स्वपन्तः।
सदासवासेवन-तुन्दिमानः, प्रवञ्चना-पुञ्जित-वित्तमत्ताः ॥६३॥

काक्षेक्षितास्ते वरवर्णिनीभिर् नीहारघोरास्वपि शर्वरीषु।
ब्रुवन्ति हन्तोल्लसिता नितान्तं, स्वस्त्यस्तु हेमन्त! चिराय जीव ॥६४॥

जो बिजली से गर्म किये गये घरों में, रूई से मोटे विस्तरों पर सुख से सोते हुए, नित्य मद्य के सेवन से बढ़ी तोंदों वाले, धोखे से इकठ्ठे किये गये धन से मत्त होते हैं, सुंदरियों द्वारा कटाक्षों से देखे गये वे, बर्फ़ के कारण घोर भी रातों में, हन्त! अत्यन्त उल्लासयुक्त कहते हैं— 'हे हेमन्त! तेरा कल्याण हो, चिरकाल तक (युग-युग) जियो'।

हे मुग्ध! हेमन्त! महीरुहाणां, शातेन रे शातय पत्रपालिम्।
न शासनं स्थास्नु, तवान्तिकेऽन्तः, सौभाग्यमेषामपि लुण्टितानाम्
॥६५॥

रे मूर्ख हेमन्त! सुख से वृक्षों की पत्र पंक्तियों को नष्ट कर दो, तेरा

शासन स्थायी नहीं, (तेरा) अन्त समीप है, लूटे गये इन (वृक्षों) का सौभाग्य भी (स्थायी नहीं और अन्त समीप है)।

इति श्रीश्यामदेव-पाराशर-संदृब्धे-ऋतुचक्रे हेमन्तवर्णनमवसन्नम् ।

— शैशिरी श्रीः —

व्याप्ता हिमानी-वसनेन भूमिर्, वृतं विहायश्च कुहेडिकाभिः ।
शोशुभ्यते किं शिशिरः शुभंयुर्, न शारदायाः प्रतिभूरिवायम् ? ॥१॥

पृथ्वी, हिम-समूह-रूपी वस्त्र से ढकी हुई है, और आकाश धुंद से आवृत है। क्या यह सुन्दर शिशिर, शारदा का मानो प्रतिनिधि सा अधिक शोभित नहीं हो रहा?

नीराणि नीतान्यतिशीतिमानं, विभान्ति घान्यात् स्फटिकोपलानि ।
क्वचिच्च हीराणि च मौक्तिकानि, शंसन्त्यहो ! शैशिरवैभवानि ॥२॥

अति शीतलता को प्राप्त हुए पानी, सघन हो जाने से बिलौर के पत्थर जैसे, कहीं हीरे और मोती, प्रतीत होते हुए, अहो! शिशिर-ऋतु के वैभवों को बता रहे हैं।

दिगन्तरे लोचन-तर्पणानि, स्फुरन्ति नो कौसुम-सौभगानि ।
साचिस्मितान्येव वराङ्गनानां, जातानि तत्स्थान उपायनानि ॥३॥

दिशाओं के बीच में, नेत्रों को तृप्त करने वाली, पुष्प-सम्बन्धिनी सुन्दरताएं नहीं चमकती हैं, उनके स्थान में सुन्दर स्त्रियों की कुटिल मुस्कानें ही उपहार बन गईं हैं।

तारुण्यमित्रस्य मनोभवस्य, माघस्य, वाऽयं महिमा विचित्रः ।
यज्ञोपवीतान्यपि यद् भवन्ति, विष्कम्भकल्पान्युपगूहनेषु ॥४॥

यौवन के मित्र कामदेव की, अथवा माघ-मास की, यह अद्भुत महिमा है, कि, आलिंगनों में यज्ञोपवीत भी खम्भों (या अर्गलाओं) के सदृश हो जाते हैं।

मनाङ्‌ मृषारोषपराङ्‌मुखानि शय्यास्वपेत्यापि परस्परेण ।
शनैः शनैः पृष्ठकमेलकानि, युग्मानि यूनां शिशिरे भवन्ति ॥५॥

कुछ झूठे रोष के कारण पराङ्‌मुख हुए, शय्याओं पर दूर हट कर भी, युवकों के जोड़े शिशिर-ऋतु में, आपस में धीरे-धीरे, पीठों को जोड़ लेने वाले हो जाते हैं ।

अज्ञातरात्रिप्रहरव्ययानि, शैत्येन चाऽद्वैतमुपागतानि ।
प्रातः सलज्जानि च सस्मितानि, जयन्ति शीते नवयुग्मकानि ॥६॥

रातों के पहरों के बीतने को न जानने वाले, सर्दी के कारण अद्वैत को प्राप्त होने वाले, प्रातः लज्जा एवं मुस्कान से युक्त, नये जोड़े, सर्दी में, जय को प्राप्त होते हैं ।

हृदन्तरे शेषमनोरथानां दृश्यानि भाते युवदम्पतीनाम् ।
मिथो व्यतीत्य क्षणदां क्षणेन, कृतज्ञताव्यञ्जनकौशलानि ॥७॥

रात्रि को क्षण में विता कर, हृदय में बाकी बची इच्छाओं वाले, नौजवान जोड़ों की, सुवह के समय, आपस में कृतज्ञता व्यक्त करने की चतुराईयां, देखने योग्य होती हैं ।

निशाऽवसानेषु नितम्बिनीनां, विलुप्त-रागादि-विलेपनानि ।
मुखानि शीतोदित-शोणिमानि, सखीजनैः सेङ्गितमीक्षितानि ॥८॥

रातों की समाप्तियों पर, लुप्त हुए रंग आदि के लेपों वाले, सर्दी के कारण पैदा हुई लाली से युक्त, सुन्दर नितम्बों वालियों (सुन्दरियों) के मुख, सखियों द्वारा इशारे करते हुए देखे गये ।

मिथः कृतार्थीकृतयौवनानि, ध्वान्ते परावृत्तपरिच्छदानि ।
शैत्योत्थवाष्पैरपरैः प्रभाते, चिरेण दृष्टानि युवद्वयानि ॥९॥

आपस में कृतकृत्य कर लिए हैं यौवन जिन्होंने ऐसे, अंधेरे में बदल गये वस्त्रों वाले, युवकों के जोड़े, प्रातः सर्दी के कारण पैदा हुए आँसुओं वाले दूसरे लोगों द्वारा देर से देखे गये ।

पूर्वं क्षणादेव गतोऽसि रे ! ऽस्तं, द्रागेव भूयोऽप्युदितोऽसि चेति ।
नीशारनिष्कासित-नेत्रकोणा उपालभन्ते द्युमणिं नवोढाः ॥१०॥

'अरे ! एक क्षण ही पहले अस्त हुआ था, और शीघ्र ही फिर तू उदित हो

गया है,' इस प्रकार रज़ाई से निकाले हुए नेत्रों के किनारों वाले, नव-विवाहित, सूर्य को उलाहना दे रहे हैं।

लम्बाऽपि रात्रिर्नवदम्पतीनां, तन्वीत्युपालम्भनमस्तु सत्यम्।
परं तपस्वी दिवसस्तनीयानप्युच्यते दीर्घतनुः कुतस्तैः ? ॥११॥

लम्बी भी रात छोटी है ऐसा नये जोड़ों (पति-पत्नियों) का उलाहना तो सच्चा हो सही, परन्तु वेचारा अति छोटा भी दिन, उन के द्वारा, लम्बे शरीर वाला क्यों कहा जाता है ?

वामेक्षणानां वचनान्यपीषत्—कषायकार्कश्यपरिप्लुतानि।
शीतेन नूनं मधुसात्कृतानि, भवन्त्यहो ! कर्णरसायनानि ॥१२॥

कुछ कसैलेपन तथा कठोरता से भरे भी, सुन्दर नयनों वालियों के वचन, निश्चय से, सर्दी द्वारा मधु-रूप वनाये गये, अहा ! कानों के लिए रसायन (सुखप्रद) हो जाते हैं।

साकूत-वाक्सस्मितचेष्टितानि, तिर्यग्दृशालोकन-पेशलानि।
शैत्यस्य शक्त्या विवशीकृतानि, जातानि मत्तानि नु यौवतानि ? ॥१३॥

अभिप्राय-सहित वाणियों और मुस्कान-युक्त हरकतों वाले, तिरछी निगाह से देखने में कुशल, शीत की शक्ति द्वारा विवश किये गये, युवतियों के समूह, क्या उन्मत्त हो गये हैं ?

रोषो वधूनां स्वदते यथासावाहार उष्णोऽपि तथैव भूयः।
कष्टं च नो कम्बलकर्कशत्वमवर्णनीया खलु शैशिरी श्रीः ॥१४॥

जिस प्रकार रमणियों का वह रूठना स्वादु लगता है उसी प्रकार अधिक गर्म भी भोजन, और कम्बल की कठोरता भी कष्टदायिनी नहीं, निश्चय से शिशिर की शोभा अवर्णनीय है।

क्वापीह कूपेषु न चापि वापी-कासार-कूलेष्ववगाहवेगाः।
स्नानस्य नाम्नापि सकम्पमङ्गं, नूनं निषेधाभिनयं विधत्ते ॥१५॥

इस समय कहीं भी, न कूओं पर और न ही बावली और तालाबों के तटों पर नहाने की भीड़ें हैं, नहाने के नाम से भी कम्प-युक्त शरीर, निश्चय से इनकार का अभिनय करता है।

प्रातर्दिगन्तावधि हां ! हिमानी-पटी धरित्रीं परितः प्ररूढा।

घनीकृता शीतभरेण नैशी, निःसंशयं भाति शशिप्रभैव ॥१६॥

हाय ! प्रातः दिशाओं के अन्त तक, पृथ्वी के चारों ओर, फैली हुई हिम-समूह की चादर, निस्संदेह शीत की अधिकता द्वारा जमा दी गई, रात वाली चाँदनी ही मालूम पड़ती है।

कालेऽतिशीते जरतां च काले, बलं विभाते सधनस्य कम्बलम् ।
विश्वासपात्रं च तथैकमात्रं, मित्रं दरिद्रस्य वदन्ति मित्रम् ॥१७॥

बूढ़ों के लिए मृत्यु जैसे, अति-शीत वाले समय में, प्रातः धनिक का बल कम्बल होता है, और गरीब का, एकमात्र विश्वसनीय दोस्त, सूर्य कहा जाता है।

दिवाकरो दन्तुर-रश्मिजालो निर्वाणतेजा नु कुहेडिकाऽब्धौ ।
किं घर्षितो वा तुहिनस्थलीभिर्, दीनः शशित्वं शिशिरेऽभ्युपेतः ? ॥१८॥

दंदानेदार किरणों के समूह वाला सूर्य, क्या धुंद के समुद्र में बुझ गये तेज़ वाला अथवा क्या बर्फ़ की स्थलियों से घिसाया गया, शिशिर में चाँदपन को प्राप्त हो गया है ?

प्रमार्जयन्ती खर-झामकेन, शैत्येन सूनोः स्फुटितं कराद्यम् ।
उपेक्षमाणाऽस्य विलापमम्बा, ग्रामीणगालीः प्रयुनक्ति गुर्वीः ॥१९॥

सर्दी से फटे हुए, बेटे के हाथों आदि को, कठोर (खुरदरे) झामे से रगड़ती हुई माता, इसके विलाप की परवाह न करती हुई, बड़ी-बड़ी गँवारू गालियों का प्रयोग कर रही है।

न सौरभैर्मेदुरता समीरे, परिष्क्रिया नापि वनीषु पौष्पी ।
भाति स्वसौभाग्यविलोप-हेतोस्तुषारशुभ्रांशुकसंवृता भूः ॥२०॥

सुगन्धियों के कारण वायु में सघनता नहीं, न ही फुलबाड़ियों में फूलों वाली सजावट है। अपने सौन्दर्य (सुहाग) के लुप्त हो जाने के कारण पृथ्वी, कुहरे-(बर्फ़-) रूपी श्वेत वस्त्र से आच्छादित प्रतीत हो रही है।

मकायपूपैरुपकल्पितानि, मध्ये मिलन्म्रक्षणमार्दवानि ।
मिष्टेन मिश्राणि च मोदकानि, यथार्थतः सन्ति हि मोदकानि ॥२१॥

मक्की की रोटियों से तय्यार किये गये, बीच में मिले माखन की कोमलता से युक्त, मीठे से मिश्रित लड्डू, निश्चय से, असल में आनन्द-प्रद

(मोदक) हैं।

विसारि-मोदानि गुडोदनानि, दधीनि माघेन घनीकृतानि।
दुग्धाग्रदिग्धांश्च समश्य पूपान्, शैत्यानि धन्या गलहस्तयन्ति ॥२२॥

फैलती सुगन्धि वाले गुड-मिले भात, माघ द्वारा गाढे किये गये दही-और मलाई से लिप्त पूए खा कर. खुशकिस्मत, सर्दियों को भगा देते हैं।

विनोद-मोदाय विलासि-वर्गाश्चमन्त्यमन्दं मदिराशरावान्।
शिष्टाः प्रसीदन्तितरां च तारा-मैत्रीं भजन्तो मदिरेक्षणाभिः ॥२३॥

मन बहलावे तथा प्रसन्नता के लिये, विलासियों (ऐयाशों) के समूह, अधिक मदिरा के प्यालों को पी रहे हैं, तथा बाकी (या सभ्य), मोहक नेत्रों वालियों के साथ आँख मिलाना रूपी मित्रता द्वारा अत्यधिक प्रसन्न हो रहे हैं।

निशासु नीहारनिपातहेतोः, स्थलानि सर्वाणि समीक्रियन्ते।
विलासवासेषु सरूपतां च, शैत्येन चेतांस्यपि यान्ति यूनाम् ॥२४॥

रातों में हिमपात होने से, सभी स्थल समतल कर दिये जाते हैं, और विलास-भवनों में, सर्दी द्वारा, युवकों के हृदय भी, एकरूपता को प्राप्त हो जाते हैं।

कासारपङ्केष्वरविन्दकन्दास्तूष्णीं निगूढा इव शीतभीताः।
अद्याऽपि नेङ्गन्ति गतेन पूर्वं, हेमन्तकालेन निरस्तधैर्याः ॥२५॥

तालाबों के कीचड़ों में, कमलों के कन्द, जाड़े से डरे हुए से, मूक छुपे हुए, पहले बीते हेमन्त-काल-रूपी काल द्वारा तोड़ दिये गये उत्साह वाले, अब भी चेष्टा नहीं करते।

प्रायो दिनाच्छीततरास्त्रियामा भवन्ति हा ! ऽस्मिन् समये परञ्च।
वियोगि-निःश्वासपरम्पराभिः शनैः शनैः शीततमाः प्रजाताः ॥२६॥

रातें प्रायः दिन की अपेक्षा अधिक ठण्ढी होती हैं, किन्तु हाय ! इस समय में, वियोगियों की निरन्तर आहों द्वारा, धीरे-धीरे और भी अधिक शीत हो गयी हैं।

तूलोपधानं परिरभ्य गाढं, तल्पे शयानो धनुषायमाणः।
विचेष्टतेऽसौ विधुरो वराकः, कालं समाक्रोशति शैशिरं च ॥२७॥

रूई के सिरहाने का गाढ़ आलिंगन कर, बिस्तर पर लेटा हुआ, धनुष

की भान्ति आचरण करता हुआ, वह वेचारा रँडवा, करवटें बदल रहा है और शिशिर-सम्बन्धी काल को गालियां दे रहा है।

अङ्गारभारैर्भरिता हसन्ती कुटुम्ब-वृद्धैः परिवार्यमाणा।
शैत्यं स्फुलिङ्गोपधिना हसन्ती, भाति स्वसंज्ञां चरितार्थयन्ती ॥२८॥

अङ्गारों के समूह से भरी, परिवार के बूढ़ों द्वारा घेरी जा रही, चिनगारियों के वहाने सर्दी का उपहास करती हुई, अंगीठी, अपने नाम को चरितार्थ करती हुई लगती है।

इङ्गाल-कालागुरुवर्त्तिधूमैर्, दीप्तैस्तथा वैद्युत-तापयन्त्रैः।
अभीक्ष्णमुष्णीकृतगर्भगेहा निन्दन्ति शीतं न विलासशीलाः ॥२९॥

कोयलों, अगरवत्तियों के धूओं और जलायें गये विजली के ताप-यंत्रों (हीटरों) द्वारा निरन्तर गर्म किये शयन-गृहों वाले विलासी, शीत की निन्दा नहीं करते।

भवेदुदीच्यो यदि वा प्रतीच्यो वातो न शीतेऽन्तरमेति तावत्।
शितो द्विधारोऽसिरिवैष जीवानितस्ततो वाऽनुदिनं दुनोति ॥३०॥

वायु चाहे उत्तर दिशा की हो चाहे पश्चिम की, सर्दी में फ़र्क नहीं पड़ता। यह तीक्ष्ण दुधारी तलवार (खण्डे) की भान्ति, इधर से या उधर से, प्रतिदिन, जीवों को दुःखी करती है।

शून्यौ च शोनौ श्रवणौ शयौ च, निष्पाद्य नीहार-निभां च नासाम्।
तनूमनीशामिव शैत्यदैत्य उद्वेजयत्येजयति प्रभाते ॥३१॥

कान और हाथ शून्य और जम गये, सर्दी का दैत्य, नाक को बर्फ़ जैसी कर के, प्रातः, असमर्थ सी हुई देह को, धमकाता और कँपाता है।

धूलिस्तुषारस्य च तूलतुल्या, यथान्तरिक्षाच् च्यवते समन्तात्।
दरिद्रितानां शिशिरार्दितानां, गलन्ति गल्लेषु तथाऽश्रुधाराः ॥३२॥

और रूई जैसी, बर्फ़ की, धूलि, जैसे आकाश से चारों तरफ़ गिरती है, वैसे ही सर्दी से पीड़ित गरीबों की गालों पर आँसुओं की धाराएं गिरती हैं।

स्फीतेन शीतेन समे सजीवा विनष्टचेष्टा हिमितं च तोयम्।
कोऽयं विचित्रः शिशिराभिचारः श्यानीकृतो यच्छ्वसितानिलोऽपि ॥३३॥

अधिक शीत के कारण सभी प्राणी, नष्ट हुई चेष्टाओं वाले हो गये, और पानी बर्फ़ बन गया, यह कौन सा, विचित्र, शिशिर का जादू है, कि श्वास की वायु भी जमा दी गई है।

उत्थाय केदारकुटीर-कोणाद् वाष्पः सधूमो गुडगन्धगर्भः।
समीरणं मांसलयन्नदूरे, स्तब्धः स्थितः शीतिमशक्तिशून्यः ॥३४॥

धूम-सहित, गुड की सुगन्धि से युक्त भाप, खेत की झोंपड़ी के कोने से उठकर, वायु को मोटा करती हुई, सर्दी के कारण शक्तिशून्य हुई, पास ही निश्चल खड़ी है।

हीना धनेनाऽथ च साधनेन, दीना जडिम्ना निरुपाय-कायाः।
सम्पूर्य मुष्टीर् मुखमारुतेन, संधुक्षयन्त्यङ्गजमुष्णिमानम् ॥३५॥

धन तथा साधन से हीन, शून्यता के कारण शक्ति-रहित शरीर वाले गरीब, मुँह की वायु से मुष्टियों को भर कर, अंगों में पैदा होने वाली गर्मी को, उत्तेजित कर रहे है।

वाध्यो न शैत्येन शवस्तु धन्यो वासोऽवसाने लभते यकस्तत्।
तोतुद्यमानः शिशिरेण नैव, प्राप्नोति जीवन्नपि दुर्गतो यत् ॥३६॥

सर्दी द्वारा पीड़ित न किया जाने वाला, शव तो धन्य है, जो अन्त में उस कपड़े को प्राप्त करता है, शीत से अति पीड़ित किया जाने वाला गरीब, जिसे जीता हुआ भी नहीं प्राप्त करता।

तीक्ष्णानि जग्ध्वा मरिचानि मन्ये, सीत्कारिणो जाड्यहता अधन्याः।
शीर्षादि-कम्पोपधिनाहुरेतद्, यज्जीवितं नेदमभीप्सितं नः ॥३७॥

मानो तीखी मिर्चें खा कर सी-सी करने वाले, सर्दी के मारे बदकिस्मत (निर्धन), सिर आदि के काँपने के बहाने, यह कहते हैं, कि यह जीवन हमें अभीष्ट नहीं है।

वासोल्लसन्मेचक-मञ्जराणां, विकासभाजां मरुव-क्षुपाणाम्।
लावण्यलक्ष्मीर् भुवनेऽद्वितीया, नसं दृशं चात्मवशीकरोति ॥३८॥

सुगन्धि के कारण झूमती साँवली मञ्जरियों वाले, विकास-युक्त मरुए के पौदों की, संसार में अतुलनीय, सौन्दर्य-लक्ष्मी, नाक तथा दृष्टि को अपने वश में कर रही है।

हिमादिवाच्छिन्न-सितच्छटानि, कुन्दानि तूर्यैस्तुलनां भजन्ति ।
वास-प्रसारैः प्रतिबोधयन्ति, प्रातः सुषुप्सन्ति युगानि यूनाम् ॥३९॥

मानो हिम से छीनी शुक्ल कान्ति वाले, तुरहियों के साथ तुलना को प्राप्त होते हुए, कुन्द के फूल, सुगन्धि के प्रसारों से, प्रातः सोने की इच्छा वाले, युवक दम्पतियों को, जगा रहे हैं।

अनामकानां विपिनौषधीनाम्, अज्ञातपूर्वः सुरभिर्विसारी ।
अत्रैव मोदेन करोति लोकान्, विहारिणो वैबुध-वाटिकासु ॥४०॥

नाम-रहित जंगली बूटियों की, पहले न जानी (सूँघी) गई, फैली हुई सुगन्धि, यहां (इस लोक में) ही आनन्द के कारण, लोगों को, देवताओं की फुलवाड़ियों में घूमने वाले वना रही है।

माघ्यस्तु मोदैर्मदयन् मनांसि, श्वैत्येन चक्षूंषि चिरं चुलुम्पन् ।
रामा-रदानां तुलनां गतोऽस्मीत्याह्लादहेतोर्नितरां प्रफुल्लः ॥४१॥

सुगन्धि द्वारा मनों को मत्त करता हुआ, शुक्लता द्वारा आँखों को देर तक बहलाता हुआ कुन्द (माघ्य), 'मैं रमणियों के दाँतों की तुलना को प्राप्त हो गया हूँ' इस खुशी से नितान्त फूला हुआ है।

लोमालिलीन-प्लुषि-पीडिताङ्गं प्रतीक्षमाणं क्षरणं हिमस्य ।
अद्रेर्नितम्बोदर-कन्दरासु, मूकं हि भल्लूक-कुलं चिराय ॥४२॥

रोमों की पंक्तियों में छुपे पिस्सुओं से पीड़ित अङ्गों वाला, बर्फ़ पिघलने की प्रतीक्षा करता हुआ, रीछों का समूह, पर्वत के कटकों के बीच वाली गुफाओं में, चिर-काल के लिये चुप है।

जडेषु भूयः सरसां जलेषु, तलेषु तु स्तोकमशीतलेषु ।
मीना विलीनाश्चिकिलेषु दीनाः, सरोजकन्दान् किमु पालयन्ति ? ॥४३॥

तलों में थोड़े कम ठण्डे, तालाबों के अधिक जमे हुए पानियों में, कीचड़ों में छुपी, बेचारी मछलियां, क्या कमलों के कन्दों को पाल रही हैं ?

खुरैः खनन्तो धरणीं विषाणैरुत्पाटयन्तो गहने च गुल्मान् ।
पांसूपलिप्ता विपुलावलिप्ताः, शूत्कृत्य तारं महिषा नदन्ति ॥४४॥

खुरों से पृथ्वी को खोदते हुए और सींगों से, वन में झाड़ियों को उखाड़ते हुए, धूलि से लिप्त, अत्यधिक अभिमानी भैंसे, शूत्कार करते हुए, तार-स्वर से गरज रहे हैं।

मतङ्गजा मार्गमहीरुहाणां शाखाशिखा-शातन-शौण्डशुण्डाः ।
वने विशङ्का विहरन्ति विष्वग्, विस्तारयन्तो बहुबृंहितानि ॥४५॥

रास्तों के वृक्षों की शाखाओं एवं चोटियों को तोड़ने में कुशल सूँडों वाले, चारों तरफ़ अत्यन्त चिंघाड़ों को फैलाते हुए, निश्शङ्क हाथी, वन में घूम रहे हैं ।

दानोदमोदैर्नगनिम्नगायाः, कषायितं कं कलुषं करिष्यन् ।
मदोद्धतः कोऽप्यथ यूथनाथो, विदार्य वप्रं विधुनोति गात्रम् ॥४६॥

मदजल की सुगन्धियों से कसैले, पर्वतीय नदी के पानी को कलुषित करना चाहता हुआ, कोई मदोद्धत गजराज, ऊँचे तट को तोड़ कर, शरीर को झटक रहा है !

कुतोऽपि पङ्के विहिताऽवगाहः, स पीवराङ्गो मदभृद् वराहः ।
उद्धूलयन्नुच्छ्वसितैः प्रथीयः, प्रोथेन पृथ्वीं हलयंश्च याति ॥४७॥

कहीं पर कीचड़ में किये स्नान वाला, मोटे अंगों से युक्त मदभरा वह सूअर, उच्छ्वासों द्वारा धूलि को उड़ा कर फैलाता हुआ, और थूथनी से पृथ्वी पर हल चलाता हुआ, जा रहा है ।

निशीथिनीषु श्रयते क्रमेण, शूना शनैः शीतलता श्लथत्वम् ।
मुञ्चन्ति चार्कोदयसम्भ्रमाणि, दार्ढ्यं प्रियाणामुपगूहनानि ॥४८॥

रातों में मारक शीतलता, क्रमशः धीरे २ शिथिलता को प्राप्त होती जा रही है और सूर्य के चढ़ जाने के कारण घबराहट से युक्त, प्रेमियों के आलिंगन दृढता (कसाव) को छोड़ रहे हैं ।

अहल्यभूमौ चण-होलकानां, पाकोद्गता कण्टक-धूमधारा ।
गोचारक-ग्रामिक-बालकानामामन्त्रणाहूतिरिवाऽभिजाता ॥४९॥

न जुती जमीन पर, चनों की होलाओं को पकाते समय उठती हुई, कांटों के धूएं की रेखा, गौएं चारने वाले ग्रामीण बालकों के लिए मानो निमन्त्रण की पुकार (आह्वान) बन गई ।

दूरात्त्यजन्तो मधुकोष-काण्डान्, मुहुर्मुहुः कण्टक-विद्धवेषाः ।
विधूय शाखा बदराणि भूमौ, बाला विलासेन निपातयन्ति ॥५०॥

शहद के छत्तों वाले टहनों को दूर से छोड़ते हुए, वार २ काँटों से बिंधे

कपड़ों वाले बालक, शाखाओं को हिला कर, मौज से बेर-फल, पृथ्वी पर गिरा रहे हैं।

होलोत्सवे मोद-विनोदहेतोः, सज्जा जनैः रेचननालिकास्ताः।
रक्तेन रागेण हि रञ्जितास्या यस्मिन्नरा वानरतां भजन्ते ॥५१॥

होली के त्योहार में, आनन्द तथा बहलावे के लिए, लोगों ने, वे पिचकारियां तय्यार कर ली है; निश्चय से जिस (त्योहार) में लाल रंग से रँगे मुँह वाले नर, वानर बन जाते हैं।

पलाशिनामङ्कुरणोन्मुखानां, शाखासु जाता जलबुद्बुदाभाः।
ता अक्षिमाला मधुमागमिष्णुं, कौतूहलेन प्रतिपालयन्ति ॥५२॥

अङ्कुरित होने को तय्यार, वृक्षों को टहनियों पर पैदा हुई, पानी के बुलबुलों जैसी, वे आंखों की पंक्तियां, उत्कण्ठापूर्वक, आने वाले वसन्त की प्रतीक्षा कर रही है।

यथा यथा फाल्गुनिकोऽन्तमेति, क्रमात्तथा शार्वर-शीतिमाऽपि।
नीशार उत्सृज्य च मूर्धदेशं, यियासतीवाऽद्य शनैः पदान्तम् ॥५३॥

ज्यों २ फाल्गुन समाप्त हो रहा है, त्यों ही क्रमशः रात की सर्दी भी (समाप्त हो रही है), और अब रज़ाई, सिर के स्थान को छोड़ कर मानों धीरे २ पादान्त (पाउँदी) की तरफ़ जाना चाहती है।

मन्ये नतात् सौरभभारहेतोर्, मुखादिवास्याः कुसुमाल्लतायाः।
स्वैरं स्पृशन् मध्यदिने कराग्रैर्, हिमाऽपिधानं हरतेंऽशुमाली ॥५४॥

मानो सुगन्धि के बोझ के कारण झुके हुए, इस वेल के मुख जैसे फूल पर से, दोपहर के समय, धीरे से किरण-रूपी कर (हाथ) से छूता हुआ सूर्य, बर्फ़ रूपी परदे को हटा रहा है।

प्रावृत्य वाटीवनशैलशालान्, सान्द्रां स्थितां स्थास्नुकुहेडिकापटीम्।
दिक्कोणवातः प्रणुदन् विदूरतः, स्पृश्यं दृशाविष्कुरुतेऽद्य दृश्यम् ॥५५॥

बगीचियों, वनों, पर्वतों और वृक्षों को ढक कर स्थित, सघन तथा टिकाऊ धुँद-रूपी परदे को, दूर धकेलता हुआ, दिशा के कोणे का पवन, आज दृष्टि से छूने के योग्य, दृश्य को प्रकट कर रहा है।

कुरङ्ग-केलिक्रम-कीर्त्तनीयः, कोलाहली कोकिल-कालीभिः।
मिलिन्दमालोज्झित-मौनमुद्रो, मरन्दमोदैर्मदयन् मनांसि ॥५६॥

सुख: समेषां समय: सुमानां, नेतेव नाट्ये निपुणो नितान्तम् ।
पृथ्वीं प्रविष्ट: परित: प्रसर्पी, कर्त्तुं कलाकौतुक-कौशलानि ॥५७॥

हरिणों की केलियों तथा चालों के कारण प्रशंसनीय, कोयलों के मधुर-स्वरों के कारण कोलाहल-युक्त, भ्रमर-समूहों द्वारा छोड़ी गई है मौनमुद्रा जिस में ऐसा, मकरन्द एवं सुगन्धियों से मनों को उन्मत्त करता हुआ, सब के लिए सुखद, चारों ओर फैलने या रेंगने वाला, पुष्पों का समय (वसन्त), अभिनय में नितान्त निपुण नेता की भान्ति, कला-रूपी तमाशे की कुशलताएं करने (दिखाने) के लिए, पृथ्वी पर प्रविष्ट हुआ ।

वित्तैर्विहीनैर्विपुलं विनिन्द्यो वन्द्योऽथ वर्धिष्णुविलासिवृन्दैः ।
औत्सुक्यगर्भो मधुभूमिकायाः यात्येष कालो घनधूमिकायाः ॥५८॥

धनहीनों द्वारा अधिक निन्दनीय और बढ़ती वाले विलासी-समूहों से वन्दनीय, उत्कण्ठाओं से भरा, वसन्त की प्रस्तावना का और सघन धुन्ध का, यह समय जा रहा है ।

लोकेऽनुपूर्व्याऽत्र यथैव दृष्टं, सृष्टं प्रबन्धेषु च सत्कवीनाम् ।
पृष्टं च लब्धं च यथा सुधीभ्यस्तथा विनीतेन मया प्रणीतम् ॥५९॥

(मैं ने) यहां लोक में जिस क्रम से देखा, सत्कवियों के ग्रंथों में जैसा रचा गया देखा, और विद्वानों से पूछा और प्राप्त किया, विनीत मैंने वैसा ही रचा है।

पदे पदेऽस्मिन् मम काव्यकल्पे, दोषास्तु शैला इव भान्ति दूरात् ।
सौजन्य-धन्यैः परमेषणीया गुणाः प्रयत्नेन गवेषणीयाः ॥६०॥

विलासशीलैर्वन-वाटिकासु, विसृज्य विष्वग् द्रुनखान् विकीर्णान् ।
तोष्टूयमाना मधुपावलीभिरास्वाद्यते सौरभसम्पदेवं ॥६१॥

मेरे इस तुच्छ काव्य में, पग-२ पर दोष तो पर्वतों की भान्ति दूर से दिखाई देते हैं, परन्तु सज्जनता के धनियों को स्पृहणीय गुण, प्रयत्न करके ढूंढ लेने चाहिएं ।

वनों और बगीचियों में, चारों ओर बिखरे काँटों को छोड़ कर, भ्रमर-पंक्तियों द्वारा अधिक स्तुति की गई, सुगन्धि की सम्पदा का ही, विलास-प्रकृति वाले लोग आनन्द लूटते हैं ।

इति श्रीश्यामदेव-पाराशर-विरचिते ऋतुचक्रे शिशिरवर्णनं सिद्धम् ।

※ प्रबन्धप्रणेतुः पूर्वपुरुष-परम्परापरिचयः ※

आसीत् परन्तप-पराशरवंशजातो,
विद्वद्वरः 'सहजराम'-पवित्रनामा ।
चक्रेऽनिशं विसृमरैःस्वयशः-प्रसारैर्,
यो वासितानथ सितान् ककुभां कपोलान् ॥१॥

जज्ञे सुतोऽतिविनतस्य 'कृपा'ऽभिधानो,
नाम्नैव नैव, किमु ? तस्य कृपावतारः ।
प्रायो गुणाः स्वपितुरुच्चपदाधिकारे,
यस्मिन् समे परिणताः सहजा इवासन् ।२॥

'कर्ता'ऽऽख्यस्य सुतस्य तस्य तनुजा' जाताश्चतुस्सङ्ख्यकाः,
ते कर्त्तुर्वेदनैः समा बलभरे वैकुण्ठ-बाहूपमाः ।
आसन् ब्राह्मणवर्य-कार्यकरणाद् धर्मावतारा इव,
चत्वारश्चतुराश्चतुर्दिगधिपैस्तुल्याः समस्तैर्गुणैः ॥३॥

वंशमञ्चकपादेषु यविष्ठस्तेषु साधुषु ।
सौजन्यधन्यजन्माभूज्, जङ्गीरामाभिधः सुधीः ॥४॥

गुरवो ग्रामगोष्ठीपु, गायन्तो गुणगौरवम् ।
श्राम्यन्ति यस्य नाद्यापि, स मेऽभूत् प्रपितामहः ॥५॥

भृशानुकम्पासहितेन तेन, परोपकाराविरतव्रतेन ।
आनन्दिता हन्त ! महत्यकाले, दैन्येन दूना धनधान्यदानैः ॥६॥

आस्तां पवित्रहृदयौ तनुजौ तदीयौ,
नासत्यतुल्यचरितौ नितरां विनीतौ ।
यन्नाम सद्गुणकथासु मुहुर्महद्भि-,
रुत्कीर्त्यते शुभनिदर्शनतामुपेतम् ॥७॥

माङ्गल्यमूर्त्तिस्तकयोः कनीयान्, श्रीमूलराजः स्मरणीयनामा ।
कृतस्मितो विस्मितमानसोऽभून्मन्ये स्वयं यद्विषये स्मयोऽपि ॥८॥

सौशील्यसत्त्व-प्रकृतेश्च तस्माद् मूलादिव स्कन्धयुगं प्रजातम् ।
सूनुद्वयं साहससत्यरूपं साद्गुण्य-सङ्घे बल-कृष्ण-कल्पम् ॥९॥

उदारप्रकृतेः स्पष्टवक्तुस्तत्र यवीयसः ।
सत्य-सौहार्द-सारल्य-सौमुख्यैः संस्कृतात्मनः ॥१०॥

श्रीमद्-'वसन्तरामस्य पुण्यारामस्य सूनुना ।
'सत्नौर'-ग्रामवास्तव्येनास्तव्येनाल्पमेधसा ॥११॥

'प्रसन्ना'-गर्भजातेन, पाराशर्याणुरेणुना ।
प्रियसंस्कृतसेवेन श्यामदेवेन निर्मितम् ॥१२॥

ऋतुचक्रमिदं भूयाद् गुणता-पक्षपातिनाम् ।
काव्यकौशल्यशीलानां प्रसादाय सचेतसाम् ॥१३॥

॥ इति ॥

ग्रन्थ-कर्ता की अन्य रचनाएँ

(1) अन्योक्ति-शतकम्
(2) शृङ्गारशतकम्
(3) चारुचरितचर्चा
(4) पंजाबी तथा संस्कृत के सम्बन्ध भाग I, II
(5) ऋतुचक्रम् (अभिनवम्-ऋतु-संहारम्)
(6) राजसिंह-चरितम्
(7) संस्कृत-वाग्विलासः
(8) काश्मीर-सुषमा
(9) परमाण्वस्त्रम्
(10) कादम्बिनी
(11) गुरु-नानकदेवः
(12) गान्धिस्तवनम्
(13) गुरुस्तेगबहादुरः
(14) भक्तसिंहः
(15) पञ्चनदस्य वीराः
(16) बल्लभभाई-पटेलः
(17) अम्बेदकरः
(18) महामना मदनमोहन-मालवीयः
(19) कवीन्द्रो रवीन्द्रः
(20) सुभाष-संस्मरणम्
(21) छन्दोमीमांसा
(22) दयामयो दयानन्दः
(23) वङ्गसङ्गरः
(24) शतवान् पञ्चाम्बु-पञ्चाननः
(25) गीयतां गणनाथकः
(26) शारदास्तवः
(27) हे श्रीकालिदास !
(28) आत्मयाजिनः
(29) बालविलासः
(30) पञ्चनद-प्रदेशः
(31) पिपासुश्चातकः
(32) मधुमासः
(33) सोपालम्भसरस्वत्युपासनम्
(34) आद्यः स्वातन्त्र्यसङ्गरः
(35) काव्यदोषाः (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध) आदि आदि ।

☞ मुद्रक : सुधाकर प्रिंटरज़, बाज़ार वकीलां, ह